काव्य वीथियाँ

मालती

काव्य वीथियाँ

प्रकृति

मालती

DESK TOP PUBLISHER
P. K. CHHATPAR
996 77 222 63

प्राक्कथन

मन और मस्तिष्क या कि कहें दिल और दिमाग की युति ही भाव व विचारों को जन्म देती है । शब्द के माध्यम से ये प्रकट कर दिये जाते हैं । पर, जब शब्दों का आविष्कार न हुआ था, तब ? तब भाव किस तरह प्रकट करते थे ? और क्या तब भाव व विचार इतनी मात्रा में घुमड़ते थे जितने कि आज ? पता नहीं, पर, आज तो लगता है – मन कभी खाली रहता ही नहीं । सब कोई बोले जा रहे हैं, लिखे जा रहे हैं, अंत ही नहीं आता । मेरे ज़हन में भी ढ़ेरों भावों–विचारों की रेलमपेल मची रहती है। लिख–लिख कर देखना चाहती हूँ, कब उसका भंडार समाप्त होगा । कितने–कितने भाव, कैसे–कैसे भाव, दुहरा–दुहरा कर आते भाव, एक–दूसरे के विरोधी भाव, कोई अंत ही नहीं है । मैंने उन्हें लिपिबद्ध कर लिया और तब देखा– मन का आंगन जग के आंगन जैसा ही तो है । यहाँ भी घर–परिवार हैं, पेड़–पौधे हैं, सरल और बीहड़ रास्ते हैं, विभिन्न रंगों के ताने–बाने हैं, समूह में भी हैं, और इकले भी हैं । छाया–प्रतिछाया है, दृढ़ता–चंचलता है, शोर है, शान्ति है, खोज है, जीवन है । धर्म, कर्म, उदासी, हंसी, आनंद, मुक्ति सभी कुछ तो है – मन के संसार में भी । जग उजागर है, छुपाने की कोशिश नहीं, मन भी क्यों न उजागर हो ले ? जो है, जैसा है – सामने है । अच्छा–बुरा, ठीक–गलत का कोई विवेचन नहीं। धन्यवाद !

मालती

प्राकृतिक सौंदर्य

कितनी भली है ये तेरी फिज़ायें,
कहीं फूल हँसते, कहीं पंछी गायें।
कहीं देखो पत्ते ये लहरा के झूमें,
फैलाके पर, नभ में पंछी ये तैरें।
कुलाँचें भरें ये हरिण देखो ठिठकें,
मस्ती में भर कर, कहीं मोर नाचें।
कहीं भौरें गुँजें, कहीं फूल महकें,
बल खाये मछली, कहीं सर्प सरकें।
दहाड़ें कहीं बाघ, चीता वो दौड़े,
चले मस्त हाथी, गेंडा वो लोटे।
लगे भूख तो ही नोचें, खसोटें,
नहीं तो रहें शांत, आनंद मना के।
गलीचा हरित लो बिछा है कहीं पर,
हरित पंछियों से ही छाया कहीं नभ।
कहीं दिखता नीला वितान अगर तो,
रंगीन है आसमाँ ये कहीं पर।
कहीं देखो चलती है इठला के नदिया,
कहीं झरने फूटे या सागर गहरा।
कभी ये जो चंदा निकले पुनम का,
कूदें ये लहरें मिलन हो सजन का।
कहीं गर्जना है तो चुप्पी कहीं पर,

यायावर मेघ

बादल बन कर उड़ता जाऊँ,
देश विदेश की सैर करूँ;
जब जो जगह रूच जाय वहीं,
कुछ देर को अपना ठौर करूँ।
मिल दूजे संग विस्तृत होऊँ,
हो विरल कभी इकला रहलूँ;
उड़ जाऊँ कभी मैं ऊपर को,
औ कभी बरस नीचे आऊँ।
मनमाना रूप धरूँ पल-पल,
रोतों को मैं बहला पाऊँ;
हर कोई मर्ज़ी के माफिक,
देखे मुझको, मैं हंस जाऊँ।
जब कृषक मुझे देखें, हंस दें,
नाचें, गायें, खुश हो जाँयें;
मछुआरे घना देख मुझको,
नैया के पाल नहीं खोलें।
ना सोचूँ मैं क्यों, कैसा हूँ,
वायु के संग बहता जाऊँ;
क्यों किसका प्रतिकार करूँ,
जब सारा जग अपना मानूँ।।

कहीं रोशनी है, तम है कहीं पर।
कहीं ऊँचे पर्वत, कहीं नीची खाई,
मिलने को झुकता भू से, यहीं नभ।
खुश है गगन, ये चंदा या तारे,
सूरज या बादल कोई उस पै छाये।
धरती भी रखती है सबको संजोये,
हो ज्वालामुखी, आम्रकुंज या कि होये।।

प्रकृत और कृत्रिम

उलझे आपस में फिर भी, ठंडक पहुँचाने में हैं सक्षम,
नीचे है वृक्षों में दूरी, पर ऊपर गुंथ बनते कुँजवन।
पानी गिरता चट्टानों पर, फिर भी प्यास बुझाता है,
बहने पर सीमा बांधी तो गंदा डाबर बन जाता है।
झरने, वृक्ष न होयँ जहाँ, कोशिश कर बनवा सकते हैं,
कलकल ध्वनि औ कुँजवनों का आनंद सब ले पाते हैं।
प्रकृत तो वांछित ही है, कृत्रिम ना सदा व्यर्थ होता,
हो न जहाँ प्रकृत, कृत्रिम सुंदर परिवेश बना देता ।
काट-छाँट केवल पीड़ादायक ही नहीं हुआ करती,
गलित अंग काटे बिन कैसे, देह ये स्वस्थ रहा करती ।
प्रकृत स्वभाव के साथ यदि, अच्छे संस्कारों को जोडें,
व्यक्ति जुड़ जाते आपस में, रिश्ते-नाते भी ठंडक दें।।

बादल

वायुयान ऊपर उठने पर, दृश्य अनुपम दिखता है,
आओ बच्चो सैर करें, कल्पना लोक सच लगता है।
पर्वत, नदियाँ, महल, झोंपडे चित्रलिखे से दिखते हैं,
पशु-पक्षी, जन, वाहन सब आँखों को ठंडक देते हैं।
श्वेत मेघ के मध्य यान, जब होता तो ऐसा लगता,
चाँदनी हमें रौशन करने दौड़ी आई, छोड़ा चँदा।
घने श्याम मेघों के बीच से, जब ये यान गुज़रता है,
काली घाटी में धंसे जा रहे, अंत नजर ना आता है।
रूई पींज कर रखे जा रहा, चतुर पिंजारा दीखे ना,
भू घावों पर रूई के फाये रक्खे, पस रीसे ना।
कभी श्वेत बादल का सागर उमड़ाता सा दिखता है,
दुग्ध नदी में तैरूँ मन में, भाव यही दोहराता है।
पर काले बादल पहाड़ से, जब भू पर उठते दिखते,
पार इन्हें कर पायेंगे क्या, मन संशय से भर देते।
श्वेत-श्याम मेघों के मिलन से, छटा अनुपम दिखती है,
कहीं रूपहली किरण और कहीं श्याम किनारी लगती है।
कभी मनुज के रूप धरें वे, कभी पेड़-पौधे बनते,
पशु-पक्षी औ महल-दुमहले, सभी यहाँ तिरते दिखते।
पक्षी बन कर उड़ूँ गगन में, पहले मन में आता था,
श्वेत मेघ बन लहरूँ-डोलूँ, ऐसा ही अब मन करता।।

सूरज, चंदा, सारे तारे,
झुक-झुक देखें छवि ये अद्‌भुत।।
उद्याम तरंगों का अविचल,
चट्टानों पर गिरते जाना।
समझाता मन हो जा निश्चल,
लहरों से ना घबराना।।
निज के आवेगों से लहरें,
स्वयं ही हो जाती हैं नष्ट।
चट्टानों की दृढ़ता उनसे
खेले, करने देती है रव।।

सूरज

चोरी-चुपके से बादल काले घनेरे आए,
नभ को सारा ही उनने घेरा,
पर सूरज डरपा ना, दृढ़ता से अपने पथ पर,
आगे बढ़ा रे वो अकेला।।
निज की किरणों की दीप्ती, चाहे हो मद्धिम चमकी,
छँटने लगा रे वो कुहासा,
बादल बेचारे हारे, पल में वे छितरे सारे,
छाया साम्राज्य सूरज का।।

पर्वत

गर्मी से तपे पहाड़ों ने,
पैरों में छाले कर डाले;
वर्षा में उगाकर मखमल उनने,
घावों पर मलहम फेरे।
आँखों में धूप चुभोई थी,
दृष्टि में पत्थर डाले थे;
वे ही अब ठंडक पहुँचाते,
'आओ' पौधों के मिस कहते।
बंजर पर्वत के पत्थर गिरकर,
चोटें ही पहुँचाते थे;
उनसे ही अब झरने बहकर,
तन-मन की प्यास बुझा देते।
निर्मम निर्मोही को पत्थर दिल,
जानें सब क्यों कहते हैं?
ऐसे पत्थर दिल सब होवें,
खुद तप कर ठंडक देते हैं।।

प्रकृत सृष्टि

कभी एक रंग का कभी सात रंग का,
बनाया वितान प्रकृति ने भू का;
धरती ने भी, देख लो उस गगन को,
लगाया दिठौना अरे, बादलों का।
ऊपर उठाये, प्रकृति ने पर्वत,
वहीं पर बना दी है, गहरी सी खंदक;
उन्मुक्त हो नभ, पगला सके ना,
रखे बांध अंधियारे में, उसके ही पग।।

विस्तृत आँगन

कितना है खूबसूरत, इस जगत का आलम,
कहीं गा रहे परिन्दे, नाचें कहीं वो छमछम।
होते ही भोर देखो, जगमग हुई दिशायें,
नामो-निशां रहा ना, फैला घना जो था तम।
ज़्यादा प्रकाश से जब तन-मन लगा झुलसने,
चंदा को भेजा उसने, जाके लगाओ मलहम।
तन-मन को बंद करके, कोने में क्यों पड़े हो,
बाहर निकल के देखो, विस्तृत है घर का आँगन।।

झरना, चट्टान और लहरें

झर-झर, झर-झर झरना बहता,
जोरों से आवाजें करता।
झाग बने हैं श्वेत उसीसे,
मन जिनमें डूबे उतराता।।
निश्चल चट्टानों को मथती,
कलरव करती जल की धारा।
वह कैसे ना विचलित होती,
सोच रहा दर्शक-गण सारा।।
चंचल जल, स्थिर चट्टानें,
दृश्य अनूठा पैदा करतीं।
जब जल चंचलता से थकता,
तब मंथर गति धारा बहती।।
इक दूजे पर चढ़-चढ़ जातीं,
'मैं पहले' का भाव गहन था।
खाई ठोकर जब चट्टानों से,
'शांत रहूँ' तब ही समझा था।।
पर्वत-पानी मिलता देखे,
होती वायु भी उद्धेलित।

माला

पेड़ और प्राणी

कोई घना है तो कोई विरल है,
है दीर्घ कोई तो कोई लघु है।
ऊँचे पहाड़ों पै उगता है कोई,
खंदक औ खाई में बसता है कोई।
खड़ा ठूंठ कोई, लदा फल से कोई,
सुगंधि अनुपम बिखराता कोई।
कोई लाल-पीला है, कोई हरा है,
पत्थर की छाती पै कोई खड़ा है।
कोई घुप अंधेरे में आँचल फैलाये,
कोई रोशनी को ही गलबहियाँ डाले।
कोई शीश अपना झुकाये है भू पर,
लगी है किसीकी नज़र आसमां पर।
देता है विश्राम कोई पथिक को,
कोई अपने काँटों से बरजै उसी को।
बतियाने को कोई उत्सुक सा दिखता,
कोई इकलेपन में ही आनंद पाता।
कोई रौंदा जाता, कोई शीश चढ़ता,
कोई रहता बच्चा, कोई वृद्ध बनता।
पाते हैं दुःख-सुख, हैं ये जीव धारी,
पेड़ों सी ही ज़िंदगी है हमारी।।

नीम का पेड़

इक नीम खड़ा दरवाजे पर, सोचा कड़वा है कटवा दूँ,
दूजे पल फिर खयाल आया, कुछ तो आगा-पीछा सोचूँ।
पत्ती इसकी कड़वी होती, फल भी तो ना खाये जाते,
लकड़ी जो धुआँ उगलती है, उससे कड़वे आँसू आते।
कड़वेपन की उपमा देने में, इससे बढ़कर कौन मिले,
बेल करेले की इसका आश्रय पा और भी तिक्त बने।
प्रभु की रचना में क्या कोई, निपट बुरा हो सकता है?
विश्वास नहीं होता इसपर, मन पुनः सोच में डूबा है।
कोंपल, फल इसके खायें तो, रोग दूर हो जाते हैं,
छाल और पत्ती के रस से, चर्मरोग भग जाते हैं।
इसकी सूखी पत्ती के सम, कीटनाश की दवा नहीं,
बरसों तक ताजे बने रहें, हों कपड़े या फिर धान सही।
मच्छर को दूर भगाने में, कड़ुवा धुआँ ही सक्षम है,
मुख दांत बनें दृढ़, कीटमुक्त हों, इसकी दातुन में गुण है।
छाया पंथी को सुख देती, पंछी भी नीड़ बनाते हैं,
कोयल, मोर, पपीहा बैठ शाख पर गाना गाते हैं।
छन-छन कर आती धूप समाँ कुछ ऐसा बाँधे जाती है,
लगता है देखे ही जाऊँ, प्रभु की करूणा उतराती है।

पूर्ण कृति मानव

जड़-चेतन उसने ही बनाये,
जल-थल-नभचर उसने जाये;
सर्वोत्तम कृति मानव लगती,
तीनों रूप-गुण उसमें पाये ।
रहा गर्भ में जो जलचर,
जग में आ हुआ वही थलचर;
बुद्धि दे उसे कहा - 'पर फैला
ब्रह्मांड नाप' बन कर नभचर ।।

मुफ्त, सस्ता तो लेंगें ना,
ऊँची कीमत पर देऊँगी।
तब से विज्ञापन देती हूँ;
लोगों को कहती फिरती हूँ,
दर-दर की खाक़ छानती हूँ,
जी हाँ, मैं ज्ञान बेचती हूँ,
हाँ, हाँ मैं ज्ञान बेचती हूँ।।

संवेदन शून्य

बादल बरसें, पौधे नाचें,
मनुवा खुश हो गाये ना;
तब समझो वो निज में उलझा,
सुरति उसकी राखे ना।
नई कोंपलें उगतीं, बढ़तीं,
मनुवा अनुग्रह माने ना;
तब समझो बौराया है मन,
अहम् अभी बिसराया ना।
जल की कलकल, पक्षी कलरव,
सुन जो मनुवा चहके ना;
बहरा हुआ शोर से अपने,
ध्वनि उनकी सुन पाये ना।।

सुख-दुःख-मन के जाये

क्या है दुःख, सुख क्या होता,
मनुवा समझ न पाता।
कभी एक जो दुःख दे जाता
कभी वही सुख देता।।
सुख-दुःख फिर हों कैसे बाहर,
मन ही अंदर रखता।
जब चाहे ऊपर ले आता,
अपने अर्थ लगाता।।
खुद ही पाले-पोसे औ फिर,
खुद ही दुःख-सुख पाता।
चेतनता में कैसे संभव,
सदा अचेतन रहता?
दुःखकर्ता ना समझे खुद को,
बाहर दोष लगाता।
पर सुखकर्ता मान स्वयं को,
फूला नहीं समाता।।
सुख-दुःख दो पहलू सिक्के के
जग ना अलग कर सकता।
यदि सुख आता अंदर से,
दुःख बाहर ना हो सकता।।

राजा और रंक

जब कोई रंक राजा बनता,
मन फूला नहीं समाता है;
राजा को रंक देखने पर,
मन नौ-नौ आँसू रोता है।
धन से न रंक, राजा मापो,
दिल ही परिचायक होता है;
राजा की मुठ्ठी बंद न हो,
पर रंक खोल ना पाता है।
कभी देखते धन मिलने पर,
सिर गरीब का फिरता है;
धन छिनने पर राजा का मुख,
दीप्ती नहीं खो देता है।
कितना ही धन मिल जाये,
ना पेट रंक का भरता है;
कौड़ी भी पास न रह जाये,
राजा न शिकायत करता है।

नियति ज्ञान की

हाँ-हाँ मैं ज्ञान बेचती हूँ,
जी हाँ मैं ज्ञान बेचती हूँ।
पूरा जब भरा ज्ञान प्याला,
छितराने लगा स्वयं सब ओर;
लोगों ने पैर तले रौंदा,
भर आया दिल का कोर-कोर।
'अनजाना है तो होगा व्यर्थ'
मुफ्त की कीमत क्या होवे;
ठप्पे को लोग रखें सिर पर,
कम सार, दाम ज़्यादा हो भले।
सामानों की यह बात न है,
आवाज़, रेसिपी की भी ना;
धर्म, ध्यान ना सीखें लोग,
कीमत यदि ऊँची होवे ना।
सर्वोपरि होकर भी जग में,
पा सका ज्ञान क्यों मान नहीं?
क्रय-विक्रय की इस दुनियाँ में
है व्यर्थ, जो दिलाये दाम नहीं।
तब ही तो किया फैसला यह,
ज्ञान कैसे भी देऊँगी;

विस्तृत मन

मन कितना विस्तृत होता है!
दिन रात चक्र सा चलता है,
नित नई बात गढ़ लेता है;
सिर पैर न हों, कोई ग़म ना,
पर खाली ना रह पाता है।
इक पर इक चढ़ लहरें आतीं,
इक दूजे को ठेले जातीं;
पर कोई भी मिट ना पातीं,
अस्तित्व सभी का रहता है।
इक दिन में वो जितना सोचे,
कागज़ पर यदि लिखते जाँयें;
जग में न समा पायेगा तो,
आयु का कहाँ सिमटता है।
यह क्या ब्रह्मांड का रूप नहीं,
कोई काल समय का बंध नहीं;
भूगोल नहीं, इतिहास नहीं,
ना गति का बंधन रहता है।
सब दानव-देव इसी में है,
शिव, सुन्दर, सत्य इसी में है;
हैं सब एकत्र विरोध यहाँ,
मंडी सा शोरगुल रहता है।।

भोगी-योगी

दूजे का ना अस्तित्व यहाँ,
इस जग में ''मैं'' ही रहता है;
मैं ही वक्ता, मैं ही श्रोता,
मैं ही कर्ता, मैं भर्ता है।
भोगी-योगी दोनों में ही,
कोई फर्क यहाँ ना होता है;
'मैं ही हूँ' इक को रूचता है,
दूजा भी 'सोहम्' कहता है।
कहता भोगी जग मुझसे ही
चलता, मुझसे ही टिकता है;
हूँ अजर, अमर, अविनाशी मैं,
योगी दोहराये जाता है।
सारे जग पर मैं छा जाऊँ,
भोगी को यह ही भाता है;
यह जगत करे पूजा मेरी,
योगी को ये ही रूचता है।
दोनों का 'मैं', साधारण जन को,
कुछ ऐसा दिखलाता है;
भोगी का 'मैं' फूला-फुग्गा,
योगी का वायु होता है।
मैं का फुग्गा पूरा ना फूले,
तब तक फूट न पाता है;
फूटे, तब ही मिले शून्य में,
'मैं' प्रभु में मिल जाता है।

पशु की गुहार

कह रहा कोई 'पशु बना मनुज',
पशु को इस पर गुस्सा आया –
''हम नहीं गये बीते ऐसे,
बिन भूख न पशुओं को मारा।
यह कैसी कृति है प्रभु तेरी,
मानव तुझ पर शासन चाहे;
गुणवान बने ना, छल–बल से,
धन–जन वश में करना चाहे।
बर्बरता देख न पायें तो,
हम पशु भी आखें बंद करें;
सत्ता के मद में पागल नर,
हर वक्त लहू होली खेलें।
तेरी रचना को, तेरा नाम ले,
वह स्वार्थी काटे जाता;
प्राण दिये मानव को प्रभु पर,
अंश न आत्मा का बाँटा?
'अंतिम उच्चाकृति मानव',
हम कैसे तो मानें ऐसा !''
झुक गई शर्म से प्रभु गर्दन,
'कहीं और न कुछ रच दूँ वैसा।'
इसलिए रहा मानव अंतिम,
प्रभु मन में हाहाकार उठा;
'मानव बन–बन जन्मूँ भू पर,
तब ही प्रायश्चित हो पूरा।।'

तन–मन और.....

तन भी, मन भी, दोनों ही तो,
औरों के आश्रित होते हैं;
कैसे पायें सुख–चैन यहाँ,
जब मुक्त न इससे होते हैं।
मन बुनता भावों का ताना,
दूजों का ही लेकर बाना;
तन तो पाया औरों ही से,
इकले मुश्किल है रख पाना।
इकले दोनों ही पंगु हैं,
पर संग टूट ना पाता है;
तन के खातिर मन पचता है,
मन को तन बहला लेता है।
इनकी इच्छाऐं पूरी करके भी,
जब खालीपन लगता;
इनसे भी अलग कहीं कुछ है,
एहसास तभी इसका होता।।

ना मैं इसका उद्गम जानूँ,
ना रूप-रेख ही पहचानूँ,
उसके स्वर सुनना ना जानूँ,
ना उसको सब में पहचानूँ;
उसका निर्णायक बनता हूँ,
'उसको जानूँ मैं,' कहता हूँ ।
कैसा बचकाना ज्ञान मेरा,
'आत्मा मेरी' मैं कहता हूँ।।

मंदी – तेजी

वस्तु के भावों जैसे ही,
तन-मन के भाव भी होते हैं;
तेजी-मंदी उनमें होती,
ये भी गिरते औ चढ़ते हैं ।
वस्तु के भावों की मंदी,
जन-साधारण को खुश करती;
मद-मत्सर भावों की मंदी,
जन-मन को उच्च बना देती ।
वस्तु के भावों की तेजी से,
व्यापारी गण खुश होता;
मद-मत्सर भावों की तेजी से,
हंता और बढ़े जाता ।।

दूजे को, निज को भी तो,
लाखों रूपों में यह देखे;
संम्पूर्ण विश्व का क्रिया क्षेत्र,
मुझको मेरा मन लगता है।।

उद्विग्नता

बिन बात ही जब गुस्सा करता,
बिन बात ही रोये जाता है;
जानो, तब है घबराया मन,
वह सच को झेल न पाता है।
कहना चाहें कुछ, कुछ कह दें,
कुछ कहते, कुछ सुन लेता है;
आकंठ भरा मन द्वन्दों से,
भीतर का बाहर आता है।
आँखें ना हों जब तक खाली,
प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता है;
सूना न रहा मन-मंदिर तो,
फिर प्रभु कैसे उतराता है।।

जीवन क्यों?

क्यों तो आते हम दुनियाँ में,
जब जाना निश्चित होता है;
करते क्या कारज प्रभु तेरा,
मन से ना मैल उतरता है।
उगता है सूरज पूरब में,
दुनियाँ को ज्योतित करता है;
कर ले कर्मठ जीवन विश्राम,
तो, संध्या में ढ़ल जाता है।
बोली से विहग मन बहलाते,
खुशबू गुलशन बिखराता है;
आँखों को वे ठंडक देते,
हमसे ना कुछ जग पाता है।
कोई यदि शीश उठाये तो,
वो ताड़ित हमसे होता है;
बनते ना हम तेरी वंशी,
कैसे तू यह सह पाता है?
जब सब कुछ तेरा ही है तो,
बुद्धि क्यों उलटी देता है;
तेरा-मेरा करते रहते,
जीवन दीपक बुझ जाता है।।

मैं, मेरा

कैसे कहता घर मेरा है?
या तो यह मिला विरासत में,
या इसके हैं हक़दार कई;
मिट्टी-पत्थर कुछ ढ़ोया ना,
रज कण में ना आत्मा डाली;
जिस तिस की भू को छीन-झपट,
कहता हूँ निज को अधिकारी,
कुंडली मार कर बैठा हूँ,
कहता हूँ ये घर मेरा है।
कैसे कहता तन मेरा है?
माँ-बाप बने थे निर्माता,
रखने में रहा योग सबका,
इक नस भी मैं न बढ़ा सकता,
फिर भी तो इस पर इतराता;
मेरा-मेरा, कहता फिरता,
औरों के काम नहीं लाता,
मिटने से बचा न पाऊँगा,
फिर भी कहता तन मेरा है।
कैसे कहता आत्मा मेरी?

समझदार नासमझ

हैरत होती है देख मुझे, इन्सां क्यों घिसटता जाता है?
होकर बलवान क्यों बेबस सम, जालों में उलझे जाता है?
निज का ही जीवन काफी है, औरों का भी देखा करता,
आदत बनती दुःखकारक जो, वो उनको छोड़ न पाता है।
इससे, उससे पढ़ सुन-सुनकर, खुद को ज्ञानी माना करता,
पर, अनुभूति का क़तरा भी, जीवन में उतर ना पाता है।
प्रभु! ऐसा क्यों जकड़ा हमको, तूने आदत के जालों में,
दुःख देते हैं औ पाते हैं, पर हंता छूट न पाता है।
सोये-सोये ही जीते हैं, जगने की कोशिश ना करते,
मूर्च्छा को जो तोड़ा चाहे, वो दुश्मन हमको लगता है।
खुद मरजी से जीना चाहें, पर औरों को जीने ना दें,
हम ग़लत कभी ना हो सकते, दूजा न सही हो सकता है।
इक प्रभु की संतानें सब ही, ये भाव क्यों नहीं गहराता,
खुद ही में बस उसको मानें, औरों में क्यों ना दिखता है?
छोटी-छोटी बातों में भी, अपनी ही सत्ता चाहें हम,
दूजे को किंचित मान न दें, आध्यात्म यही क्या होता है?
जीवन-व्यवहार रहे हमसा, नुक्ता-चीनी ज़िद करते हैं,
जीवन-पंछी उड़ जायेगा, उस दिन का ध्यान न आता है?
दागी चंदा को पूजें हम, दागी इन्सां को दुतकारें,
हम भी तो धुले ना दूधों से, इसका एहसास न होता है?।

सतही जीवन

फिर फिर के वही दोहराते हैं,
गल़ती से सीख न पाते हैं;
होता है घाव सतही केवल,
तब ही तो भूले जाते हैं।
'घटना ये घटी दूजे के कारण,
मेरी भूल ज़रा सी थी';
निज गलती दूजे पर थोपी,
तब ही तो संभल ना पाते हैं।
दूजे की जगह निज को रखकर,
हम सोच विचार करें कैसे,
निज कर्म विवेचन को जब हम,
इक लमहा ना दे पाते हैं।
जो कर्म व्यर्थ नब्बे प्रतिशत,
वो आवश्यक सम हम करते;
स्वाध्याय, मनन, ध्यान, सेवा
नित कल पर टाले जाते हैं।।

आदमी–एक जोड़ या शून्य

कुल मिलाकर आदमी, एक जोड़ ही तो है ।
कुछ आया पिछले जन्मों से, कुछ भ्रूणावस्था में आया,
जब नहीं समझता था कुछ भी, उस शिशु अवस्था में आया ।
दिखना, सुनना जब शुरू हुआ, माँ से, दाई से कुछ सीखा,
दादा–दादी, भाई–बहिनों से और पिता से कुछ सीखा ।
फिर हुआ बड़ा तब दोस्त बने, उन सबने भी कुछ शिक्षा दी,
स्कूल गया जब पढ़ने को, तब गुरु–जनों से शिक्षा ली ।
नाटक, टी. वी. और रडियो ने भी तो कुछ सिखा दिया,
पुस्तक और पत्रिकाओं का भी तो उस पर असर हुआ ।
संस्थानों और समाजों ने भी, उस पर रंग चढ़ाया है,
नेता–अभिनेता, अलग–अलग वर्गों ने, उसको सींचा है ।
यौवन में जीवनसाथी से भी कई तरह के पाठ पढ़े,
बच्चों से भी कुछ सीखा, नौकर–चाकर कुछ सिखा गये ।
अब सोच रहा है मैं क्या हूँ, कौनसा रूप मेरा मानूँ,
सबकी छाप मिटाने पर, जो बचा रहे वो 'मैं' जानूँ ।
एक–एक कर दूर किये, जब उसने हस्ताक्षर सबके,
एक बड़ा सा रिक्त शून्य ही, हाथों में आया उसके ।।

छोटी–छोटी बातें

छोटी–छोटी बातों से ही घर बनता है,
छोटी–छोटी बातों से ही घर मिटता है ।
छोटी घटना से चरित्र जन जाना जाता,
छोटी–छोटी बातों से ही झगड़ा होता।
छोटी–छोटी बातें ही आनन्द देती हैं,
छुटकी बातें ही मन को मैला करती हैं ।
छोटा सा इक बीज बड़ा बरगद बन जाता,
छोटा अणु टूटे तो सारा जग हिल जाता।
छोटी सी करूणा से प्राणी जी जाता है,
छोटा प्रिय आघात शूल सा चुभ जाता है ।
छोटी सी इक भूल सदा पछतावा देती,
छुटकी घड़ी भक्ति की, जीवन रस से भरती।
छोटे–छोटे काम व्यक्ति पहचान कराते,
छोटी बातों पर विचार, व्यक्तित्व बनाते ।।

इसकी-उसकी करते रहते,
संतोष नहीं मिल पाता है।
'जाना सब कुछ, पाया सब कुछ',
मन को यों भुलावे में रखते;
दर्पण से न आँखें चार करें,
दीखे न कहीं थोथा जीवन ।।
ये कैसा बना लिया जीवन ?।

उत्तरदायी कौन ?

मैं कैसे भूली जाती हूँ,
दुःख सुख मेरी ही कमाई है,
जाने अनजाने कर्मों का,
जीवन ही उत्तरदायी है।।
मैं कैसे भूली जाती हूँ,
यहाँ सभी लौट के आता है,
जितने पत्थर मारे मैंने,
उतनी ही चोटें खाईं हैं।।
मैं कैसे भूली जाती हूँ,
अनुभव से न शिक्षा पाई है,
कहती हूँ कुछ, करती हूँ कुछ,
जीवन में न प्रेम सगाई है।।

मैं और वह

निज दोषों को गुण कहते हैं, परदोषों पर छींटे कसते,
निज कर्म सभी शुभ होते हैं, परकर्म न उचित कभी होते।
निज भाव उदात्त सदा होते, परभाव कालिमा में रहते,
निज विचार हैं बुद्धिपरक, पर के विचार बस शठ होते।
पैसे दे काम कराऊँ मैं 'ईनाम दिया उसको' कहता,
दूजा जब वैसा ही करता, 'रिश्वत देता' मैं ही कहता।
गुरुजन का जब अपमान करूँ, 'संकुचित बुद्धि वे' कहता मैं,
पर, जब दूजे वैसा करते, मैं कहूँ 'संस्कृति ना उनमें'।
'घर के कारण करना पड़ता', जब उलट-फेर करता हूँ मैं,
'है स्वार्थ बुद्धि ही बस उसमें', कोई और करे तब कहता मैं।
'है ललक सीखने की उसको', अपने बच्चे के लिये कहूँ,
'पीछा ना छोड़े, है जिद्दी', दूजे बच्चे का नाम धरूँ।
स्व औ पर का यह खेल सदा, मैंने तो ऐसा ही देखा,
ईर्ष्या औ द्वेष न मिट पाँयें, जब तक न मिटे सीमा-रेखा।

मैं

सब है सही जगत में रे, बस एक गलत 'मैं' ही तो है ।।
'मैं हूँ सही, न सुनूँ किसी की', तब नर उच्छृंखल बनता,
'मुझसा नहीं वीर कोई', बतलाने को हत्या करता।
'मुझसे हो धनी न ज़्यादा कोई', चोरी डाके डलवाता,
ऐश्वर्य-भोग बस में मेरे, बतलाने को भोगी बनता।
'सुन्दरतम माना जाऊँ', इसलिये सदा सजता-धजता,
'करें सभी मेरी पूजा', इसलिये दंड कर में रखता।
'व्यवहारिक बनने को, ऊँचा-नीचा तो करना पड़ता,
मैं न करूँ कोई कर देगा', मैं ही व्यवहारिक बनता।
अपनी मैल छुपाने, उस पर रंग-रोगन करता रहता,
'मैं' के इस जंगल में सत्य, सरल मुखड़ा कोई ना दिखता।।

मन

पल-पल, छिन-छिन जी ना पाये,
रहे कल्पना में खोया;
स्मृतियों की गाथाओं से,
मुक्त कभी ना हो पाया।
मन ही कहता 'दूर करो मन',
कैसे यह संभव होवे ?
'दृष्टा बनो विचारों के' कह,
वही विचार गढ़ता जाये।।

रिक्त जीवन

ये कैसा बना लिया जीवन?
भरी रखी अलमारी फिर भी,
नित कपड़े बनवाते जायें;
ढ़ेरों गहने रक्खे फिर भी,
जाने कहाँ जगह दिख जाये ।
दुर्लभ वस्तु ला ला कर हम,
नित घर में भरते जायें;
जीना तो खाने के हित है,
छप्पन भोग हमीं बनवायें ।
देख सजावट घर, तन की,
दूजे ईर्ष्या से भर जायें;
सभी ध्यान इस पर होता,
खाली न मिले कोई पल-छिन।।
ये कैसा.....
सामानों से भरा भवन,
स्वच्छंद घूमना ना होता;
होवे न कहीं मैला आँगन,
खेलना उमंगित ना होता ।
नित घूमें, पार्टी में जायें,
आनन्द नहीं टिक पाता है ;

विचार प्रतिबिंब

घृणा घृणा को उपजाती है, प्रेम प्रेम को उपजाता,
कहते सुनते सभी यही हैं, 'चोली-दामन का नाता' ।
'प्रेम करोगे यदि किसी को, वह भी प्रेम निभायेगा,
यदि घृणा आये उससे, तो बीज तुम्हीं ने बोया था ।
है बुरा यदि कोई तो तुम, बस दूजे तो सब अच्छे हैं,
प्यारे हैं, उनके स्वभाव, बोली में गुड़ के लच्छे हैं ।'
यह बात सदा सब दुहराते, सुन-सुन के दिल भर आता है,
क्या सत्य सर्वदा ही है यह, संशय मन में घर करता है ।
यह विचार उठ-उठ आता, क्या प्रेम प्रेम को जन्माता,
जो घृणा दीखती है जग में, है कौन अरे उसका धाता ?
दुनियाँ को प्यार लुटाया था, लोगों ने उसे काट डाला,
मंसूर के दिल में घृणा रही क्या, जो उसका बदला पाया?
सुकरात का दिल था प्रेम भरा, लोगों पर असर नहीं लाया,
केवल ना कैद किया उसको, दे करके ज़हर मार डाला।
बस प्रेम दिया था ईसा ने, फिर घृणा कहाँ से आई थी?
तिल-तिल करके उसको मारा, क्या वो विचार परछांई थी ?
होते विचार ही प्रतिबिंबित, यह नियम अटल ना रहा कभी,
कृष्ण, राम भी हार गये, ना बदले रावण, कंस कभी ।।

प्यार भला उपजे कैसे ?

आकंठ भरे हैं ईर्ष्या से, तो प्यार भला उपजे कैसे?
कोई हमसे बड़ा सुहाता ना, सबकी कमियाँ देखे जाते,
दुनियाँ जो अच्छा कहे, उसे हम खाई-खंदक बतलाते।
ओछेपन पर जब दृष्टि गड़ी, शिखरों की बात करें कैसे।।
फिर प्यार भला उपजे कैसे?
लोभ-मोह में प्राण बसे, तो प्यार भला उपजे कैसे?
सबसे पहले हम ही पहुँचें, चुन कर अच्छी वस्तु लेलें,
भले न काम हमरे आये, दूजे की ज़रूरत पर ना दें।
मुट्ठी पर ही सब ध्यान धरा, भावों को देखें तो कैसे?
फिर प्यार भला उपजे कैसे?
तन-मन मद की भाषा बोलें, तो प्यार भला उपजे कैसे?
पद या शिक्षा में हम महान, या धन या कला ज्ञान हम में,
मानवता हमसे ही जीती, तन या मन सुंदर बस हममें।
जब प्राण बसे इस हंता में, दूजों के गुण परखें कैसे?
फिर प्यार भला उपजे कैसे?
इस तन को ही सब कुछ माना, तो प्यार भला उपजे कैसे?
तन की खातिर सब कर्म करें, इंद्रिय सुख पायें जतन करें,
जग के सब भोग उसे दे दें, दूजों की चिंता हम क्यों लें ?
भौतिकता पर सब ध्यान धरा, आत्मा की बात करें कैसे?
फिर प्यार भला उपजे कैसे?

अंतर्विचारणा

यदि कोई वध करे किसीका, शायद रोक सकेंगे हम,
यदि बीमार हो कोई तो करके ईलाज बचवा लें हम।
चलें सड़क पर चौकन्ने हो, काम करें चौकस हरदम,
तो भी क्या मृत्यु आने पर, रोक सकेंगे उसको हम?
एक सत्य मृत्यु ही दिखती, फिर सब जीवन झूठ रहा,
कहाँ रहे फिर आपा-धापी, तेरा-मेरा कहाँ रहा ?
अभी-अभी कोई ज़िन्दा था, अभी यहाँ वह रहा नहीं,
स्वप्न संजोये उसके बल पर, सभी तिड़क कर गिरे कहीं।
लगता है जीवन बेमानी, धन-दौलत भी व्यर्थ लगे,
पूजा-अर्चा सभी फालतू, जीने का ना अर्थ लगे।
धीरे-धीरे उसी लीक पर, फिर सब चलने लगते हैं,
वही राग औ वही द्वेष, सब खैंचा-तानी करते हैं।
जो था ज़िंदा कभी, रहा उसका न निशान कहीं बाकी,
यदि आ जाये कभी अचानक, देखेगा न जगह बाकी।।
रोज़ देखते यह किंतु अपनी मृत्यु ना दीखती है,
सभी जी रहे ऐसे जैसे बरसों जीना बाकी है।
'हम हों विशिष्ट, सब याद रखेंगे,' उसी ओर सब ध्यान धरा,
हैं कौन, कहाँ से आते क्यों, कब होगा चिंतन गहरा?।

प्रतिमूर्ति

अपना कह कर सीमा बाँधें,
सीमा न किसीको कभी रूचे।
घुन लगता ही जाता भीतर,
संबंध खोखले हो रहते।
अपनों पर है अधिकार मेरा,
सब यही समझते रहते हैं।
है मुझ पर भी अधिकार उन्हें,
इस सच से आँख चुराते हैं।
अपने से ही रंग रूप में,
रंगें अपनों को, यह चाहें।
प्रतिमूर्ति नहीं बनती जग में,
हठ से मन मैले हो जायें।।

समाज सेवी

जग में सब जीकर मरते हैं,
पर हम मर-मर कर जीते हैं,
जज़्बाती जहाँ में जो जीये,
वो समझे, हम क्या कहते हैं।
एक लम्हा भी ना बीते जब,
कोई चिंता, फिकर नहीं होती,
खुद को तो खुदा पर छोड़ दिया,
औरों के लिये ही पचते हैं।

ध्यान की मुश्किल

अनायास कौंधा विचार–
आत्मा पर ध्यान न क्यों जाता ?
मुँह फाड़े तन माँगे जाता,
कल्पना वस्त्र मन नित बुनता
फिर, ना माँगे, ना डोले, उस
आत्मा पै ध्यान कैसे जाता?
तन उलझाता है कामों में,
मन बाँधे रखता भावों में,
ना कर्म, न भाव मग्न हो, उस
आत्मा पै ध्यान कैसे जाता?
मन जिस पर भी आ जाता है,
तन प्राप्ति चेष्टा करता है,
सतत तुष्ट रहने वाली,
आत्मा पै ध्यान कैसे जाता?
दौड़–भाग से तन थक जाता,
मन भी सदा विजय ना पाता,
फिर भी रहता उनमें उलझा,
आत्मा पै ध्यान कैसे जाता?
तन–मन किसकी शक्ति से है?
जड़–चेतन जग किसमें थित है?
हंता में लिपटा, सोचे ना,
आत्मा पै ध्यान कैसे जाता ?

बंधित प्राण

सहने की सीमा होती,
जग क्यों ये भूला जाता?
अपमानित व्यक्ति कब तक,
जोड़े रक्खेगा नाता ?
वाणी पर अंकुश रक्खा,
तो आँख भेद खोलेगी।
आँखों को बंद किया तो,
तन में थिरकन हो लेगी।
जो देह बाँध कर रक्खी,
मन–प्राण न बंध पायेंगे।
बौरा कर मन भटकेगा,
उड़ प्राण पंछी जायेंगे।।

विशेष प्रवृत्तियें

इमली का पेड़ रहे खट्टा, उससे वह जाना जाता है,
कड़ुवाहट नीम की नियति है, उससे पहचाना जाता है।
सागर कितना ही यत्न करे, पानी मीठा ना होता है,
कड़ुवे वृक्ष पर बन कर भी मधु, मीठापन ना खोता है।
कोशिश कर-कर के जग हारे, कुत्ते की पूँछ न सीधी हो,
बिल्ली तो चूहा खायेगी, चाहे कितनी दूध-मलाई हो।
श्वान न स्वामीभक्ति छोड़ेगा, चाहे जान चली जाये,
दूध पिलाओ चाहे कितना, फिर भी सर्प डँसे जाये।
सीता प्रति न्याय करें कैसे, मर्यादा छोड़ न पायें राम,
इक पत्नी व्रत कैसे धारें, चंचलता त्याग न पायें श्याम।
पाया था ज्ञान किंतु दुर्वासा, अपना क्रोध न छोड़ सके,
दुःख ही पाते रहे सदा, ना भीष्म प्रतिज्ञा तोड़ सके।
ऋषि बने परंतु विश्वामित्र, काम को ना बिसरा पाये,
धर्मपताका के नीचे इन्दर ने धोखे सिखलाये।
वस्तु हो या प्राणी हो, गुण-धर्म विशेष वो पाता है,
रग-रग उससे ही लिप्त रहे, उससे वह जाना जाता है।
उस विशेष धर्म को फिर, क्यों बुरा-भला कहते रहते,
रोम-रोम में व्याप्त रहे वह, प्रभु भी जुदा न कर सकते।
यदि परिवर्तन संभव होते, ऋषि, देव बदलते अपने को,
तारों की खेती होवे ना, क्यों व्यर्थ सताते हम सब को।।

द्विरूपी व्यक्तित्व

दो व्यक्ति बसते हैं – मुझ में,
है मुखर एक औ दूजा मौन ।
अपनी हस्ती इक बतलाता,
दूजा चुप रह देखे जाता;
तूफानी कह सकते इक को,
दूजा बस शान्ति फैलाता ।
आशा के महल बनाये इक,
दूजा 'जो है' से सचु पाता;
भय ग्रस्त सदा इक रहता है,
दूजे को कुछ न कंपा पाता ।
बड़बोले की महिमा भारी,
मुझको भी तो तन 'मैं' दिखता;
है सत् स्वरूप मेरा अंतस,
जानूँ ना कैसे, कब दिखता ?
पर, उसकी झलक शांति देती,
परिवेश सुवासित हो जाता;
पहला नीचे, दूजा ऊपर हो
तो मैं आनन्दित होता ।।

मापदंड

कृष्ण! समझ ना आता मुझको, कैसा है टेढ़ा जीवन?
एक ही बात को धर्म और अधर्म कहा, जब बदले जन।
कृष्णा पर अत्याचारों का बदला, जब कहलाता है – धर्म
अन्याय हुआ गांधारी पर, बदले को हम कहते – अधर्म!
भ्रातृ–पत्नी को बाँट, भोग फिर दाँव लगाया था उसको,
कहते हो – था वह धर्मराज, क्यों कोसा फिर दुर्योधन को?
प्रतिकार न किया भीष्म ने, अन्यायों को चुप रह साथ दिया,
पुत्रेच्छा ही पूरी की धृतराष्ट्र ने, फिर क्यों बुरा कहा?
अपने स्वभाव से ना हटकर, वो तो स्वधर्म पर चलता था,
गाली सुन मारा शिशुपाल को, फिर भी कृष्ण! उचित ही था?
लाक्षागृह बस उनकी छलना, तुमने सर्वत्र छला उनको,
बल में जिन–जिन से कम थे तुम, धोखा देकर मारा उनको।
फिर भी कहलाते ईश्वर तुम, पांडव ध्वज–धर्म कहाते हैं,
कौरव कहलाते घोर अधर्मी, कैसे माप बनाते हैं?

ईश्वर

विवश प्रभु

क्या मिला तुझे ओ गिरधारी,
सबको तूने लड़वा डाला,
कुंती पुत्रों के हित सारे,
भारत को ही मथवा डाला?
जब धर्मात्मा भी बचे नहीं,
तो हुई धर्म रक्षा कैसे?
देख रहे थे महानाश,
ना रोक सके, ईश्वर कैसे?
कहने की जरूरत क्यों होती,
तुमको क्या दिख ना पाता है?
पुण्यात्मा हैं गिनती के अब,
पापी का रेवड़ बढ़ता है।
आशा तुमसे रक्खें कैसे,
तुम शस्त्र हाथ में लोगे ना,
अन्यायी, अत्याचारी, पापी,
तुमसे तो संभलेंगे ना।
बिगुल बजाओ धर्मयुद्ध का,
चाहे विश्वनाश होवे,
धर्मी ना बचें भले चाहे, पर,
नाश पापियों का होवे।
फिर प्रण ले लेना, हे सर्जक,
'मानव को नहीं बनाऊँगा,

जिस पर मेरा वश रह न सके,
वो खेल कभी ना खेलूँगा।
शिव, सुंदर, सत्य विश्व मेरा,
रौरव नर्को सा दिखलाये,
इससे अच्छा वीरान रहे,
मेरी हस्ती भी मिट जाये।।'

रचना की वरीयता

घने मेघ में छुपी सूर्य-रश्मि भी जब दे सकती ताप,
अदृश्य प्रभु! स्वार्थी मानव मति का,
क्यों ना कर सकते नाश?
सुदूर ध्वनि को भी जग में,
चहुँ ओर सुना जाता तत्क्षण,
फिर क्यों मानव सुन ना पाता,
हो रहा नाद तेरा हर क्षण?
अवनि, अंबर, पाताल के
अंतस में क्या है, जब देखे नर
फिर क्यों ना झाँक सके निज में,
क्या तूने ही पकड़ा है कर?
बोलो प्रभु बोलो, उत्तर दो,
क्या सीमित हाथ तुम्हारे हैं?
या तेरी कृति माने न तुझे,
मानव से हाल तिहारे हैं।।

शासन की डोर

कैसा प्राणी गढ़ दिया अरे, कुछ नहीं समझ में आता है,
गलती से कुछ न कभी सीखे, फिर-फिर दोहराये जाता है।
'इकबार दूध से जला छाछ भी फूँक-फूँक कर पीता है'
लागू न कहावत इन्सां पै, अनुभव बिसराये जाता है।
'आदत के जालों में लिपटा, चाहूँ पर कदम न उठ पाता,'
भूला वह, लगन न है गहरी, जड़ जालों को न काट पाता।
अच्छी आदत पड़ जाँय तभी ऋषि गुरू ही शिक्षा देते थे,
माँ बन कर सुता संवारेगी, उसमें संस्कृति भर देते थे।
पर आज कार्य यह हुआ कठिन, टी.वी. विलासिता भरती है,
माँ के सिखलाये आदर्शों को क्षण में दूर भगाती है।
अब, माँ भी धन, पद चाहे, नौकर पर बच्चों को छोड़ा,
घर बिसराया, बच्चों में फिर, कैसे दीखे चरित्र थोड़ा ?
स्वारथ के पुतले ही दुनियाँ में सदा रहे आए ज़्यादा,
अँगुली पर गिनती हो जाती, है जिनमें चारित्रिक क्षमता।
चरित्रवान के हाथों में प्रभु शक्ति क्यों न थमा देते?
कुछ तो अधर्म कम होवेगा, दो राजदंड कर में उनके!!

गाथा

आर्त हृदय की पुकार

कैसा है ये जीवन क्यों हम यूँ ही जीये जाते।
उठना-सोना, खाना-पीना, आयु बिताये जाते।।
होना है सो ही होता, ये सोच के बैठे रहते।
कभी अगर मन भर आए तो कागज़ काले करते।।
लेकिन, अब चुप बैठ सकें ना, देख बिलखती धरती।
लपटों ने दुनियाँ को घेरा, जानें हो गईं सस्ती।।
एक बार फिर आओ केशव, तत्त्व बढ़े हैं स्वार्थी।
धर्म-चक्र चलवाकर फिर से, जग में लाओ शांति।।

मन और प्रभु

मन अश्व दौड़ते ही जाते,
उनकी लगाम कब खींचोगे?
अर्जुन के सारथि उत्तर दो,
क्या पक्षपाती कहलाओगे?
या फिर कह दो ''बस पशुओं को ही,
मैं वश में रख सकता हूँ,
मानव मन पर मेरा वश ना,
जित कहे उधर बस चलता हूँ''।।

धरती की पुकार

पूछ रही हूँ कृष्ण! तुम्ही से, उठो, ज़रा मुँह अब खोलो,
दिया धर्मयुद्ध नाम जिसे, क्यों वहाँ अनीति की, यह बोलो।
भीष्म, द्रोण औ कर्ण पराजित हो न सकेंगे यह जाना,
आश्रय लिया कपट का तुमने, धर्म मरोड़ा मन-माना।
या कि वचनबद्ध, परम शौर्य को तुम्हें सिखावन देनी थी,
'दिया अनीति का साथ यदि तो वही मृत्यू बन आनी थी।'
आज उसी द्वापर युग सा फिर घना अंधेरा छाया है,
नीति, धर्म ताड़ित होते, अन्यायी फिर उठ आया है।
'अत्याचारी का नाश करो' क्यों नहीं पुकार लगाते हो?
'नीति-धर्म लो खड्ग हाथ में' बुद्धों को न जगाते हो?
झूठ, फरेब, कत्ल, छल का ही राज्य ज़मीं पर छाया है,
क्या पापी का घड़ा अभी तक पूर्ण नहीं भर पाया है?।

बिल्ली

चढ़ने में मुश्किल हो फिर भी,
दो मंजिली खिड़की से आती,
मैं समझ न पाती, बिल्ली क्यों,
मेरे घर में बच्चे देती।
बिल्कुल न सताती है, मुझको,
ना दूध-दही पर मुँह मारे,
गंदगी नहीं रखती बिल्कुल,
कैसे कह दूँ फिर मैं, 'जा रे'।
देती हूँ रोटी-दूध परन्तु,
कभी-कभार ही वो लेती,
बच्चों को खिलाने देती है,
वो क्रोध कभी-भी ना करती।
बच्चों के बड़े हो जाने पर,
वो मुँह से पकड़ कर ले जाती,
जब फिर बच्चे जनने होते
तब ही, वापिस घर में आती।
पर समझ न आए मुझको क्यों,
बिल्ली मेरा ही घर चुनती?
घर जगह बदल कर देख लिया,
बच्चे देने कोई आ जाती।

थोड़ी ही देर में वह माता,
वॉर्ड के बाहर भागी थी।
डॉक्टर ने बताया - 'बच्चे ने
कल से न दवाई पाई थी।
'फ्री में खून दे रहे हैं,
पर खर्चे और न उठा सकें।
चाहे बच्चा घर ले जाना,
पर, पिछला बिल ना चुका सके।'
वो आई, तब मैं पास गई,
बच्ची को दिया खिलौना एक।
उससे छीन दिया वापिस,
बोली - ' ना लालच देओ नेक।
दो बच्चे घर में तड़प रहे,
पति रोज़ी को कैसे जाये?
जब तक ना घर पहुँचूँगी मैं,
इक दाना तक ना मिल पाये।'
'दवा खातिर रूपये रख लो'
बोली - 'खैरात न लेऊँगी।
इक नाक की लौंग बची है ये
बेचकर बिल तो चुका दूँगी।
सोलहसौ रूपये देने हैं,
छः सौ तो यहाँ जमा ही हैं।'
कह, वो फिर भागी थी बाहर,

कहते हैं, शगुन ये अच्छा है,
दौलत घर में आ जाती है,
मैं कहती – कुछ दिन घर में,
अच्छी रौनक छा जाती है।।

चिड़िया

चूँ चूँ चीं चीं की आवाज़ों से
मेरा घर आँगन भरतीं,
जब देखो तब चिड़ियाँ मेरे
घर अंडे देने आ जातीं।
पंखों में रोशनदानों में,
मूर्ति, पर्दों के पीछे भी,
खुले बक्स या अलमारी,
पंखों, तस्वीरों के पीछे भी।।
पढ़ने, सोने, खाने, पूजा का
कमरा हो या हो चौका,
दिखता हर दिन, हर कमरे में,
चिड़िया का घर मुझको बनता।
देतीं अंडे, उनको सेतीं,
घास-पात, रूई चुन लातीं,
फिर चूजे की चीं चीं सुनके,
फुदकें वे फूली न समातीं।।

चोंचों में दाना दे पोसें,
सिखलातीं हौले से उड़ना।
पर ऐसा भी अक्सर होता,
देखें गिर चूजों का मरना।।
छाबें, गमले, डलिया, पिंजरे
मैंने सब ही लाकर रक्खे,
रूख ना कर उस ओर,
चुनें, चीनें निज घर, अपने ही मन से।
चिड़ियाँ होतीं खुद्दार सभी,
क्यों नहीं समझते दानवीर।
क्यों मानव मन ना है ऐसा,
श्रम का फल ही गरिमा देता।।

खुद्दारी

इक दिन की बात बताऊँ मैं
बच्चों के वॉर्ड में बैठी थी।
धाड़ मार इक औरत रोई,
उस ओर ही आँखें फेरी थीं।
नर्सें, डॉक्टर, लोग सभी,
दौड़े उस ओर लिये शंका।
सोचा मैंने – बेचारी का
बच्चा अब न रहा होगा।

टूटते रिश्ते

समझ ना आवे कोई कैसे
भूल सके अपने को?
है वो संत भेद ना राखे,
देखे सम करि सबको?
निज को तो भूलें ना पल भर,
भूलें निज जायों को,
अपने तन-मन की सुधि लें,
बिसरें जीवन साथी को।
धूल बराबर मानें रिश्ते,
पर न तोड़ते उनको,
धन, पद, मान उन्हीं से तो हैं,
छले जा रहे सबको।
मति उनसी क्यों ना दी हमको,
भार बढ़त है हिय को,
काटो मोहपाश प्रभु हमरे,
बिसर जायें खुद ही को।।

पगलाई थी, देखा मैंने।
सह ना पाया दिल अब और,
आगे बढ़कर रास्ता रोका।
'ये हज़ार रूपये ले लो', पर,
पैर पकड़ उसने बोला –
'जब चुका नहीं पाऊँगी तो फिर
ये रूपये कैसे ले लूँ?'
'बच्चों की फिक्र करो पहले,
दे रहा प्रभु, यह मैं मानूँ।'
'साँसत में जान पड़ी मेरी,
पहले घर का पत्ता लिख दो।
करके काम चुका दूँगी,
'हाँ' बोलो, फिर ही पैसा दो'।
'हाँ' कहा जो मैंने, फिर भी तो
पैसे के लिये न हाथ बढ़ा।
'दो पहले पता', करी थी ज़िद,
बोली मैं – 'डॉक्टर घर को चला।
जाओ पहले रूपये देकर,
छुट्टी लो, मैं तो यहाँ ही हूँ।
दे दूँगी पता, चुका देना,
खुद्दारी की मैं कायल हूँ।
खुद्दारी की मैं कायल हूँ।।'

जितने मुँह, उतनी बातें

देखे वो ही मतलब डाले।
शव एक पड़ा था पटरी पर, घेरे थे उसको नारी-नर,
पहचान रही हो मुद्दत से, ऐसे सब बात रहे थे कर।
कहा एक ने, 'इम्तहान में फेल हुआ यह, मैं जानूँ',
दूजा बोला, 'रहा प्रेम में विफल, यही कारण मानूँ।'
'नहीं पिता से बनती थी, गुस्सा ही यही रंग लाया',
'चरित्रहीन माँ के गम ने ही, आज अरे, उसको खाया।'
'संगी-साथी थे भले नहीं, उसकी गति यह ही होनी थी',
'अरे नहीं, भूखे की यह ही हालत कभी तो होनी थी।।'
'वो रहा गिरहकट, उसके पीछे सारी पुलिस पड़ी ही थी',
'विभिन्न गुटों के मतभेदों ने, जान उसी से हर ली थी।'
'छिपी वासना कारण इसका, ब्लैकमेल वो करती थी',
'मालिक के अपमानों ने, जीने की चाह न रक्खी थी।'
ये सब घटना स्थल पर थे, जितने मुँह उतनी बातें थीं,
निज राग अलापे जाते थे, शव की कोई चिंता ना थी।
वृद्ध एक बैठे थे चुप, चादर से ढ़ाँप उसे बोले,
'चढ़ रहा तभी चक्कर आया, गिर पड़ा वहीं पर मुँह खोले।
धक्का खा ऊपर रहा नहीं, गाड़ी बिजली की रूकी नहीं,
प्रारब्ध इसीको कहते हैं, कब कोई कुछ कर सका कहीं'।।

संबंध

बच्चे और अभिभावक

कैसा आया युग आज,
कि बच्चे अभिभावक संग ना रहते।
मन माफिक सब करना चाहें,
कोई ना थोड़े झुक सकते।।
''माँ-बाप सदा से जिद्दी हैं,
हम पर हावी ही रहते हैं।''
'संस्कृति का रखें खयाल नहीं,
बच्चे मनमानी करते हैं।।
देते ना आदर-प्यार हमें,
पागलखाने भिजवाते हैं।'
''घर में बंद रखना चाहें,
आज़ादी हमें न देते हैं।।''
''औरों के बच्चे हैं अच्छे,
बिन पूछे डग ना भरते हैं।''
''माँ-बाप भले हैं दूजों के,
सब जिम्मेदारी लेते हैं।।''
दोषारोपण इक-दूजे पर
करते, मन खट्टा हो जाता।
रिश्तों में अहम् न बिसरें तो,
दुःख पायें और तोड़ें नाता।।

अभिभावक और बच्चे

लियाकत जहाँ खाती रहती है ठोकर
वफा रौंदी जाये, ये उसका मुकद्दर।
किसी को किसी का ना विश्वास भू पर,
हो देश, समाज, संस्था या घर।
बच्चे ही धन होते, माता-पिता के,
कहें वो, करो कर्ज चुकता हमारे।
बड़प्पन ही जब ना रखा गुरुजनों ने,
तो झंडा बगावत का आया करों में।
पृथ्वी के सहने की भी सीमा आती,
तभी फटते ज्वालामुखी, बाढ़ आती।
ज़रा सोचो-समझो, अभी वक्त बाकी,
बनालो रे अपने ही बच्चों को साथी।
ना इतना दबाओ, अरे बालकों को,
कि आदर, धर्म वो बहा दें, विमुख हो।
संभालो रे खुद को, सहो बालकों को,
अमिट प्रेम, विश्वास निज का उन्हें दो।
अलग सत्ता उनकी भी है, ये समझ लो,
निज स्वप्न बंधन में उनको न बांधो।
संभव यदि हो तो इतना ही कर दो,
जो चाहें वे बनना, मदद उसमें दे दो।।

नारियल के वृक्ष की पत्ती

पत्ते की मध्य रेख गहरी,
उस रेखा के अनेक प्रहरी,
उसकी रक्षा को जुड़ रहते,
बाकी जीवन उनका ही री।
बहु आयामी जीवन में,
इक प्रमुख लक्ष्य पर साम्य रहे,
बाकी सब जीवन है स्वतंत्र,
क्यों खींचातानी व्यर्थ करे।
पूरे ही जीवन पर अधिकार करूँ
जब ऐसी चेष्टा हो,
भेदभाव तब जन्म लेयँ,
गुट बनें, परस्पर झगड़ा हो।
विभिन्न भाव लेकर, पारिवारिक,
जन अपना जीवन जीते,
एकता न टूटे घर की कभी,
इस एक बिन्दु पर मिल रहते।
पर यह बिन्दु बिन्दु रहता,
व्यक्तित्व नहीं ग्रस लेता है,
कलाकार, वैज्ञानिक, धार्मिक,
सबका वह घर रहता है।
आज़ादी से व्यक्ति अपना,
जीवन सफल बनाता है,
पर एक बिन्दु पर मिले बिना,
जीवन ना दृढ़ता पाता है।।

तत्वों का योग

गुण, धर्म वही रहते तत्वों के,
यह सारी दुनियाँ जाने।
रहें वही गुण-धर्म मनुज के,
बस ये ही क्यों ना माने?
दो भिन्न वस्तुओं से मिल बन,
तीजे का रूप जुदा होता
ऐसा ही है सन्तानों में,
क्यों अभिभावक हावी होता?
व्यर्थ वस्तुओं के योगों से,
वस्तु नई बन जाती है
उसके गुण-रूप सह्य होते,
उपयोगी वह बन जाती है।
चीनी मीठी, नींबू खट्टा,
ये अलग न खाये जाते हैं।
दोनों मिल जब शरबत बनता,
तन-मन ठंडक से भरते हैं।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह को,
क्यों न मिला पाते हैं हम?
प्रगति व्यवस्था आये इससे,
सूत्र खोजते क्यों ना हम?।

संबंधों का दायित्व

अपना कहने में तुम पीड़ा,
अपमान, बोझ अनुभव करते,
तो मुक्त किया संबंधों से,
अब से तुम समझो गैर मुझे।
संबंध नहीं टिकते जब
सुख-दुःख, रोटी ना बाँटे जाते,
परिचित ही बनकर रहें, दोस्त भी,
ऐसे तो ना बन पाते।
संबंधों का दायित्व बड़ा,
हर कोई झेल न पाता है,
सब लादे जाते बोझों से,
जब तक वो मर ना जाता है।
ज़बरन अधिकार ही होता है,
कोई कर्तव्य न रहता है?
कैसा है दुनियाँ का खेला,
कोई चुप देखा करता है।
जब प्रेम ना हो संबंधों में,
तब यह कहना ही उचित लगे,
लो मुक्त किया संबंधों से,
अब से तुम समझो गैर मुझे।।

तुलना है व्यर्थ

अच्छा-बुरा न कोई जग में, तू क्यों तोले जाता,
भाग्य लिखे विधना ने जैसे, कर्म वही नर करता ।
दूजे को कोई कैसे समझे, लक्ष्य विलग होते हैं,
अपनी दृष्टि से देखें तो, मीत नहीं मिलते हैं ।
अपने दिल की राह चला चल, दूजे को चलने दे,
अपने दुःख-सुख अपने आश्रित, श्रेय न दूजे को दे ।
दूजे का क्या रोना जग में, अपने पर तू रो ले,
हँसी उड़ावै दूजे की क्यों, अपने पर ही हँस ले ।
झाँक अरे अपने अंतस में, प्रभु देते निर्देश,
सोई करले सुख मिलता हो, या मिलता हो क्लेश ।
दिन औ रात साथ ही रहते, प्रभु हटा ना पाये,
भला-बुरा तो संग लगा है, तू क्यों कलपा जाये ?

बंधन – ज्वाल

दुनियाँ कहती है घर जिसको, वह घर जैसा ना दिखता है,
रणभूमि कह सकते उसको, अंतस में ज्वाल सुलगता है ।
दूजों के मतभेदों के संग, हम आनन्द से जी लेते हैं ,
अपनों के भेद न सह पाते, घर पीड़ा से भर देते हैं ।
दूजों के ताने सह लेते, अपनों के सह ना पाते हैं,
दूजों का ध्यान रखा करते, अपनों को देख न पाते हैं ।
दूजों की सीख लगे अच्छी, अपनों की कड़वी लगती है,
मन घाव सहेजें दूजों के, अपनों के न मलहम लगती है ।
घर–घर की कहानी है यह ही, जानें, पर आँखें बंद रखें,
प्रभु ! बुद्धि क्यों ना तू देता, सोचें, मतभेदों में जी लें ।
जड़ चेतन सबको उपजाकर अधिकार जताया ना तूने,
बंदे अधिकार जताते हैं, कुछ अंश नहीं तेरा उनमें ?
स्वामीत्व बने दुःख का कारण, हंता के स्वर ही लड़वाते,
प्रकृति से क्यों ना सीखे नर, बंधन ज्वालामुखी उपजाते ।।

संवाद

'रिश्तों के संग जीवन सुमधुर', क्या तुम्हें अचंभा ना लगता ?
जहाँ वाद–विवाद न हों घर में, संवाद खुशी दुगनी करता ।
संवाद बिना मन में हल्कापन, नहीं किसी के आ पाता,
वाद–विवाद करे दिल खट्टा, सदियों से यही कहा जाता ।
सोलह साल करें पूरे तो, बालक मित्र बना करते,
इस गूढ़ बात को भूलें जब, तब ही झगड़े पैदा होते ।
संवाद मित्रता में होता, हठधर्मी से ना हो सकता,
दूजे को अपने सम समझें, कैसे विषाक्त मन तब होता?
संवादों की सुविधा ना हो, दिग्भ्रमित किशोर हुआ करते,
गुरुजन ना सुनें समस्या को, तो बाहर हल ढूँढ़ा करते ।
पति–पत्नी में संवाद न हो, तब ही तो घर घर ना रहते,
दूजे को सुनें समझ लें हम, तो फिर हंता का क्या करते ?
मन की बात सुना करता, वो ही तो हमको रूचता है,
साँचे में ना ढ़ालें उसको, हर व्यक्ति अनुपम होता है ।
वादों का जब हम थामें कर, तब ही विवाद पैदा होते,
सुविधा, संचय, भय, लोभ आदि ही इसके जनक हुआ करते।
उन्मुक्त गगन पर रखें नज़र, तो वाद नहीं टिक पाते हैं,
निःस्वार्थी मन की धरती पर, संवाद प्रतिफलित होते हैं ।।

दोस्ती

कोई क्यों ना अच्छा लगता,
कोई क्यों हमको रूचता है।
कोई ना हलचल मचा सके,
ऐसा कैसे, क्यों होता है ?
दिल के तारों से मेल न हो,
वो शख्स नहीं अच्छा लगता।
दिल जिस पर भी आ जाता है,
वो जिगरी दोस्त बना करता।।
दिल की दोस्ती दिल से निभती,
ना बीच दिमाग को ले आना।
उम्र, जाति, धन, धर्म आदि की,
बेड़ी ना पहना देना ।।
शौहर–बीबी भी बनो दोस्त,
छोड़ो निज तानाशाही को।
महबूब रहें सम भावों में,
ना रूचे गुलामी दोस्तों को।।
जब दोनों की खूबी निखरे,
तब जीवन खुशियों से भरता।
विश्वास प्रेम का जब दृढ़ हो,
तूफान न उसे हिला सकता।।

अपने–पराये

अपनों की पीड़ा दुःख देती,
औरों की पीड़ा सह जाते।
अपनों का सुख हर्षित करता,
औरों में भावहीन रहते।
और करें अपमान तो जन,
कुछ हँसते से ही सह जाते।
पर, अपनों से अपमानित हो,
वे ही ठंडी साँसें भरते।
औरों का झूठ विलग करता,
अपनों का झूठ व्यथित करता।
धोखे औरों से चल जाते,
अपनों से शूल चुभा करते।
औरों की छीन–झपट मन में,
करूणा या भय जन्मा देती।
अपनों की छीन–झपट पर क्यों,
हम मन को मथते ही रहते।
अपने और परायों से,
संबंध एक से ना होते।
इक में अपनी ही छवि दिखती,
प्रतिबिंब न औरों में बनते।
अपनों के प्रति जो भाव उठें,
दिल की गहराई से आते।
औरों के प्रति विचार उथले,
प्राणों को न कंपित कर पाते।।

मन–मीत

मन–मीत मिले क्या संभव है?
कहें जिनको भ्राता या दोस्त,
फेर लें मुँह वो पल भर में।
स्वार्थ की टक्कर होय जहाँ,
या प्रेम बंटे जब दूजे में।।
देखें जब जीवन–साथी को,
तब भी विश्वास नहीं होता।
सुविधा को साथ चलें दोनों,
मन एकाकार नहीं होता।।
प्रेमी, पति, साथी, दोस्त सभी,
बस नहीं अजनबी होते हैं।
कुछ–कुछ होता विचार साम्य,
फिर भी दो के दो रहते हैं।।
सीता, राधा की करूण कथा,
यह ही बतलाती है हमको।
द्रुपद–द्रोण, सुग्रीव–बालि,
ये सब कैसे बिसरे हमको?
सब स्तर पर, सभी जगह,
दे पाया साथ नहीं कोई।
आशा ही है, यह निराधार,
'मन–मीत मिले हमको कोई'।।

मन–मीत शब्द रचना भी तो,
यह पक्ष उजागर करती है।
दो शब्दों से इक शब्द बना,
लघु रेख मध्य में रहती है।।
फिर प्राणवाण् जगती कैसे,
घुलमिल कर एकाकार होय।
दो व्यक्ति दो ही रहते हैं,
मन प्राण युति संभव न होय ।।

प्यार मुट्ठी में बंद ?

प्यार भरा दिल कैसे तो,
दुःख दर्द किसी को देवेगा?
अपमान करेगा जिस तिस का,
दूजों के हक को छीनेगा?
मन में कुछ और जुबां पर कुछ,
क्या प्यार इसी को कहते हैं?
कसमें दिलवाये प्यार की 'गर,
विश्वास इसीको कहते हैं?
सच कहने का साहस ना हो,
तो प्यार नहीं हो सकता है।
कस कर बाँधी मुट्ठी कहती,
कोई अपना ना हो सकता है।।

कुशासक

तुमने आज़ादी दिलवाई, यह अहसान तुम्हारा है,
लालच, स्वारथ में आज सने, अन्यायी नाम तुम्हारा है।
भारत भू का बच्चा-बच्चा, आज लगाता नारा है,
'दूर हटो' गद्दार शासको भारतवर्ष हमारा है।।
पाँच दशक बीते, जनता की हालत सुधर न पाई है,
अनपढ़ और गरीब बढ़े, महँगाई की बन आई है!
युवा वर्ग को काम मिले ना, तभी लगाया नारा है।। दूर.....
गुँडों की रक्षा करते, नारी रक्षा ना कर पाये,
ज्ञानी को अपमानित करते, बुद्धु सिर पर चढ़ जाये।
वोट मिले जाँयें तो, आरक्षण का लिया सहारा है।
संविधान के नियमों से ऊपर, कुर्सी को धारा है।। दूर.....

नेता और आरक्षण

डाक्टर, वैज्ञानिक, प्रोफेसर,
इंजिनियर सब भारत के
मंत्री के काम नहीं आयें,
आते वे सब आरक्षण से ।
देश के पैसों से वे तो
जायें या बुलायें विदेशों से,
जनता से बस इतना मतलब
दाना फैंकें, लड़वायें वे।

राजतंत्र

भारत

हम रहे जगत में कुछ विशिष्ट, हमसा न हुआ जग में कोई,
विज्ञान, कला या आत्म क्षेत्र में जीते जो, भारत सोई।
इस सदी में दो-दो युद्ध हुए, पर किया न रक्तपात हमने,
फिर भी, आज़ादी की हासिल, अचरज से ही देखा सबने।
हम हैं विशिष्ट आज भी तो, बस पासा ही तो पलटा है,
पूजा करता था जग पहले, वह आज हमीं पर हँसता है।
विज्ञ हमारा चाहे फिर भी, यहाँ नहीं रह पाता है,
घर की मुर्गी दाल बराबर, बाहर नाम कमाता है।
फिर भी जग से हम कहते हैं, भिक्षा दो भई भिक्षा दो,
विज्ञान, ज्ञान में हैं पिछड़े, कुछ मदद करो, वैज्ञानिक दो।
कलाकार ना हमसा कोई, सारा जग इसे जानता है,
पर वही यहाँ भूखों मरता, बस नौन-तेल पर जीता है।
सब नहीं गरीब यहाँ पर हैं, नतमस्तक हो कर जीते हैं,
झोली पसार कर माँग सकें, इसलिये गरीब कहाते हैं।
बरसों से दान ले रहे हैं, फिर भी ना दशा सुधरती है,
घी-दूध बहा था कभी जहाँ, भूखों-नंगों की बस्ती है।
इक भूखा भू पर गिरा पड़ा, इक नोटों पर ही सोता है,
कैसे सहते हैं फर्क बड़ा, यह नहीं समझ में आता है।
शासक-गण पर लाखों खरचें, भूखों को रोटी दे न सकें,
झूठों-मक्कारों को शह दें, सच और ईमान यहाँ न टिकें।
न्यायालय औ शालाओं में भी, राजनीति ही खेल करे,

अनपढ़ को धन-पद मिल जाते, पढ़ा-लिखा बेकार रहे।
शिक्षित पर यह जग हँसता है, क्यों नहीं बगावत वह करता,
पर एक डोर में बँध पायें, ऐसा विश्वास नहीं जमता।
नहीं, आज चुप मत होना, भू-देवी की चीत्कार सुनो,
बढ़ता आता दानव अधर्म, कर में अब धर्म-खड्ग थामो।
शासक के ऊपर संतों की, तलवार लटकने फिर देना,
इक ही मानदंड रख सबका, जग में खुशियाँ ले आना।
मानव धर्म, नीति, शिक्षा, ना राजनीति से अलग रखें,
सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की राहों पर, शासक बढ़े चलें।
तब ही पायें बीता गौरव, तब ही खुशहाली आये,
फिर नहीं हँसे कोई हम पर, भारत 'सिरमौर' कहा जाये।।

नेता और पैसा

पैसा मिले, यदि मुझको, मैं गाली भी सुन सकता हूँ,
पैसा मिले, यदि मुझको, मैं हमला भी कर सकता हूँ।
पैसा मिले, मुझे तो, सच को झूठ बना दे सकता हूँ,
पैसा मिले, मुझे तो, बाप गधे को भी कह सकता हूँ।
पैसा मिले यदि तो बेटी, पत्नी बेच भी सकता हूँ,
पैसा मिले यदि तो अपना देश भी दाँव लगाता हूँ।
पैसा पुजवाता है मुझको, मैं पैसे को ही पूजता हूँ,
कोई और नहीं है परमेश्वर, पैसे को प्रभु मानता हूँ।।

माली और विषबेल

देश-विदेशों के शासन में, वही पुराना युग दिखता,
सत्य, साहसी विदुर बतायें पथ, क्या बुद्धिवर्ग चलता?
अपने ही नेत्रों से ना, पर के नेत्रों से भी देखा,
अक्षम हैं भगवान स्वयम्, जो रहे बीज वह ही फलता।
यदि बदलना संभव होता, राम बदलते रावण को,
वंश-नाश क्यों कृष्ण करें, जो बदल सकें दुर्योधन को।
धोखा खाते हर बार परन्तु, फिर भी बातों में आते,
युधिष्ठिर निज सीधे मन को, व्यवहारिक नहीं बना पाते।
रावण और विभीषण की गाथा हमको बतलाती है,
माता-पिता, स्थिती सम हो, तो भी व्यक्ति अलग ही है।
अन्याय, दुष्टता को सहना ही, यदि प्रभु को सिखलाना था,
न तो छोड़ता घर ही विभीषण, महाभारत ना होना था।
युग-युग से इतिहासों ने, प्रभु ने ये ही समझाया है,
बनें न कायर नैतिक जन, दुष्टों को हरवाया है।
फैल चुकी विष-बेल आज, फल-फूलों को निगले जाती,
अब तो, साहस दिखलाओ माली, बगिया उजड़ी जाती।।

संत, नेता और सेवक

कुछ ऐसे लोग भी होते हैं।।
कोई व्यंग करे, ताने मारे,
पर काम निकलता हो उनसे,
तो वे परवाह नहीं करते,
क्या संत इन्हीं को कहते हैं?
उनके हित हो सबका जीवन,
पर वे न किसी का काम करें,
तन-मन-धन पर कुंडली मारे,
क्या नेता इनको कहते हैं?
करते हैं हम समाज सेवा,
सब वक्त उसी को देते हैं,
उसके पैसे पर हक़ बनता,
क्या सेवक इनको कहते हैं?

न्याय तुला

भारत का गौरव था महान् हम कहते नहीं अघाते हैं,
फिर क्यों कर उसका पतन हुआ, कोई सोच-विचार न करते हैं।
सुविधानुसार जब वर्ण बनाये, बीज भेद का बोया था,
उच्च ब्राह्मण, निम्न शूद्र को क्यों कैसे रूच सकता था?
आधार धर्म का भी लेकर, बहु वर्ग बनाये थे हमने,
उनकी टक्कर ना हो ऐसे उपचारों को सोचा हमने?
धर्मग्रंथ की गाथाओं पर एक नज़र जो डालें हम,
कारण अपने गिरने का, बिजली सा कौंधेगा इक दम।
पत्नी-पुत्र वस्तु हैं निज की, हरिश्चंद्र ने बेचा था,
द्रुपद-सुता को दाँव लगाया, व्यक्ति उसको समझा था?
राधा गरीब से प्यार किया, शादी की राजकुमारी से,
विरहिन का रोना दिया उसे, खुद ब्याह रचाया लाखों से।
सीता का निष्कासन भी कोई गर्वित होने योग्य नहीं,
अन्याय देखते भीष्म मौन, सत् का क्यों लेते पक्ष नहीं?
जन्म कथायें कहती हैं, नारी की कुछ हस्ती ना थी,
जीवन के सब ही अंगों में, बलवानों की तूती थी।
कायरता छिपा सकें अपनी, सहने का बाना ओढ़ लिया,
बर्बरता दिखा सकें खुलकर, तो धर्म उसीको नाम दिया।
हर व्यक्ति अनूठा होता है, क्यों वर्ग भेद करते जाते,
धार्मिकता व्यक्ति की होती, उसको समाज में क्यों लाते?
धर्म, जाति, लिंग भेदों का, ना मूलोच्छेद करें जब तक,
न्याय तुला पर सब सम ना, खुशहाली ना आये तब तक ।।

धार्मिकता

दोष राष्ट्र का है कि उसने
संस्कृति पर ना ध्यान धरा।
घर-समाज ने संस्कारित
करने का नहीं प्रयास किया।
बल, अर्थ और स्वार्थ की पूजा
जब जग में बढ़ जाती है।
हिंसा, दंभ, झूठ, बेईमानी
जन पर शासन करती है।
सुसंस्कृति का है ज्ञान नहीं,
फिर संस्कार देवें कैसे?
दिग्भ्रमित हो रहा युवा वर्ग
रक्षा चरित्र की हो कैसे?
धर्म विशेष का ज्ञान न दो,
पर धार्मिकता तो सिखलाओ।
समभाव सिखाते सभी धर्म
उस नैतिकता को अपनाओ।

कायर को ही डरपा सकता, सिंहों के सम्मुख फटके ना।
गधा बाप को, बाप गधे को, कहता जब अवसर आता,
बहुरूपिया नेता का, मानवता से इतना नाता।।

बच्चों की पुकार

भारत भू के बच्चों ने, नेताओ तुम्हें पुकारा है।
दूर हटायें जाति-धर्म के झगड़े, हमने धारा है।।
सब मानव हैं भाई-भाई, यह नारा लगवायेंगे,
अल्पसंख्य औ निम्न जाति कमज़ोरी ना ला पायेंगे।
आधार बने योग्यता हमारी, भीख न लें स्वीकारा है।
दूर हटायें जाति-धर्म के झगड़े, हमने धारा है।। .....
भाई हो अयोग्य यदि तो पद पर न उसे बैठायेंगे,
जो काम निपुणता से कर पाये वो ही उसे दिलायेंगे।
रिश्ते, वर्ग, लिंग की फाँसें, काटें यही विचारा है।
दूर हटायें जाति-धर्म के झगड़े, हमने धारा है।। .....
लालच देनेवाले हैं गद्दार देश के, ये मानें,
फूट डालनेवालों का, समाज से निष्कासन कर दें।
डंडे से काम कराये जो, वो नेता नहीं हमारा है।
दूर हटायें जाति-धर्म के झगड़े, हमने धारा है।। .....
हिंदु, मुस्लिम, सिख, ईसाई सब में भाईचारा है,
मंदिर, मस्जिद, गिरजा, गुरुद्वारे में 'वो' ही बैठा है।
सत्य और शुभ, सुन्दर मानवता, बस धर्म हमारा है।।
दूर हटायें जाति-धर्म के झगड़े, हमने धारा है।। .....

धर्म युद्ध

सूनी गोदी, उजड़ी माँगें, देख नहीं ये दिल तड़पा,
चले जा रहे हैं सब ऐसे, जैसे वो सब सपना था।
बुत न बनाना कहा बुद्ध, नानक, ईसा, पैगंबर ने,
उनकी ना सुन बुत बनवाये, रक्षा में निकाली तलवारें।
अल्ला, ईसा, बुद्ध, राम के भक्तो अब छोड़ो झगड़ा,
प्रस्तर खंड हटाओ अब भी, करलो प्रभु का मन चाहा।
तैंतीस करोड़ देवता का मतलब था, हर कण वो ही है,
सबमें उसे खोज पायें, इस कारण बुत की मनाही है।
सुबह का भूला लौट शाम आये तो भूला ना रहता,
तोड़ो स्वयं प्रभु कारागृह, देखो! वो सब में बैठा।
अरे! काटना ही है तो अपनी-अपनी नफ़रत काटो,
निज में झाँक इबादत कर लो, तुम खुद ही परमात्मा हो।।

कट्टरवादी

मस्जिद तुड़वाने वालो, क्या गर्व करें इस श्रद्धा पर,
कण-कण में राम बसे कहते, फिर उन्हें मारते हो पत्थर?
ईश्वर के भी तुम ईश्वर हो, उसके सर्जक बन जाते हो,
इक महल गिराकर उसका ही दूजे का वहीं बनाते हो?
यदि ईश्वर तुम्हरे ही कारण जीता, रहता या मरता है,
निज मूर्ति स्थापित कर दो, न कहो प्रभु भाग्य विधाता है।

काटो अन्याय

शासक ना होते दुनियाँ में यदि
शासित निज शासक होता,
वह माने तब ही शासक है
ना माने, शासक ना होता।
शासक हमको बस में रखता,
वह डोर हमीं तो देते हैं,
जिससे वह राह दिखाता है,
अधिकार हमीं तो देते हैं।
शासक अच्छा ना होवे तो
हम भूल सुधार न क्यों करते?
उसको उतार दें गद्दी से,
अधिकार प्रयोग न क्यों करते?
अन्याय को सहने में तो कभी,
ना क्षमा, दया भूषण होते,
सत्य, न्याय स्थापित हों,
सब धर्म यही कोशिश करते।
एक झूठ बोला तो फिर,
सौ झूठ बोलने पड़ते हैं,
इक अन्याय सहा तो फिर,
अन्यायी ढ़ेरों बनते हैं।
बने पेड़ अन्यायों का,
बहु यत्न काटने में लगता;
जड़ें खोद फैंको बाहर,
देखो जब उसे जन्म लेता।

नेता और मानवता

अनगिनत मुखौटे ओढ़े जो, वह ही नेता कहलाता है,
जो विरोध में करे समन्वय, चतुर वही तो होता है।
उपदेश नशाबंदी के दे, वह ही शराब भी बनवाता,
फसल तम्बाकू की करवा, करती हानि पोस्टर लिखता।
खरचे करोड़ आने-जाने में, जहाँ न ज़रूरत है उसकी,
उत्सव पर खरचे लाखों, प्रतिमा बनती है भारत की।
दीन और भी दीन बनें, वह बाहर हाथ पसारेगा,
'दीनों की खातिर पचता हूँ' वो फिर भी नाम कमायेगा।
ईमानदार से 'कर' लेता, रिश्वत ले, धनी मुक्त करता,
देश-विदेशों के सौदों में, अपना हिस्सा रख लेता।
सच्चाई पर बोले जाता, पर सच का गला घोंटता है,
निडर बनो कहता है, पर निज रक्षक फौज़ बढ़ाता है।
साम, दाम या दंड, भेद से, सबको अपनी ओर करे,
लेकर नाम महात्माओं का जनता को गुमराह करे।
धर्म-भावना का आश्रय ले, सहना उनको सिखलाता,
निज को ज़रूरत आन पड़े तो धर्म युद्ध करवा देता।
चोरों की पकड़-धकड़ करके, चुपके से उन्हें छोड़ देता,
भले-बुरे सबही लोगों के वोट हाथ में ले लेता।
उसको एकांत न कभी रूचे, अपने से ही डर लगता है,
चमचों को हरदम पास रखे, आत्मिक आवाज़ न सुनता है।
खाल भेड़िये की ओढ़े, पर मिमियाना तो छूटे ना,

जागृत बचपन

भारत भू का बच्चा-बच्चा आज लगाता नारा है।
करके दूर सभी भेदों को गले मिलेंगे धारा है।
हिंदु, मुस्लिम, सिख, ईसाई को भाई बतलाते हो,
शूद्र, ब्राम्हण, बनिया, धोबी को फिर क्यों लड़वाते हो।
बैसाखी क्यों देते हो, जब साबुत पाँव हमारा है ।।

करके दूर.....

आरक्षण दे डॉक्टर बनवाते, पर न दवा हमसे लेते,
यदि छींक भी तुमको आए, अमरीका दौड़े जाते,
हमने अब पहचाना, ऐय्याशी पर ध्यान तुम्हारा है।।

करके दूर.....

बाबासाहब, गांधी, जे.पी. को हमने नेता माना,
धर्म, जाति, वर्ग, भेदों का नाम निशान नहीं जाना;
घर में फूट डालने में, वोटों का स्वार्थ तुम्हारा है।।

करके दूर.....

धर्म, जाति का वास्ता दे, तुम हमें नहीं छल सकते हो,
सत्य जुबान हमारी बल से, बंद नहीं कर सकते हो;
चेतो स्वारथ के अंधो, हो कुरूक्षेत्र क्यों धारा है।।

करके दूर....

नियमों की एकता

भारतवासी भरमाओ ना,
अब, सच से आँखें चार करो;
स्वार्थी बन ही यदि रहना है,
भारत के हित स्वार्थी बन लो।
जाति, प्राँत, भाषाई नेता,
छोटी गुटबाजी छोड़ो;
भारत के हैं हम भारतीय,
हिन्दुस्तानी भाषा बोलो।
धर्म व्यक्तिगत होता है,
उसको ना सड़कों पर लाओ;
कानून सभी के हित होता,
सब एक नियम में बंध जाओ।
स्कूली पाठ्यक्रम इक रख कर,
तन-मन बच्चे का पुष्ट करो,
देश-भक्ति औ नैतिकता का
पाठ पढ़े, गुमराह न हो।
व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र
मानवता क्रमशः उच्च रखो,
तब ही विकास होवे पूरा,
जब ये वृत्त पूरा कर लो।।

आरक्षण

भारत के पुत्रो! उठो आज मां की छाती भर आई है।
युग बीत गये, अब तक भी सबने समभूमि ना पाई है।।
निम्न जाति के लोगों को अवसर समानता के देंगे
आरक्षित सीटों पर उनको, कम नंबर से बिठवा देंगे।
यह जाल बिछाकर शासन ने सब निम्नवर्ग को फाँस लिया
उट्ठो! पाते हो भीख अभी भी, सम धरती ना पाई है।। युग बीत ...
निम्नवर्ग की सीटों ने बस भिक्षुक तुमको बना रखा,
उस काँटे से शासन तुमको, मनमाना फिर घुमा सका।
होकर भी योग्य उनकी आँखों में, तुम ऊंचे ना उठ पाये,
उनके घर, ऑफिस में तुमने, क्या ऊँची पदवी पाई है ? युग बीत .....
उथले स्वार्थों को छोड़, राष्ट्र के गौरव से अब जुड़ जाओ,
अब ना कहलाये निम्न कोई, सब हैं समान मिलकर गाओ।
'कुछ वर्ष और' के दानों से अब तुम समझौता ना करना,
धर्म, जाति की शक्ति पर नौकरी नहीं, न पढ़ाई है।। युग बीत .....
देश बेचने वालों की ही जाति नीच हुआ करती,
जनता का पैसा व्यर्थ फूँकनेवालों को न भीति लगती?
उट्ठो! अपने गौरव धन को वापिस उन लोगों से ले लो,
युग बीत गये पर गाँवों में क्या खुशहाली आ पाई है? युग बीत .....
टी.वी. और रेडियो पर शासन ने निज अधिकार रखा,

जनता ना दोष पकड़ पाये, तथ्यों को तोड़-मरोड़ रखा।
अपने को अब ना अलग रखो, भारतवासी सब मिल जाओ,
जाति, धर्म से शासन ने, अपनी सेना बढ़वाई है।। युग बीत .....
गंगा, जमुना, सरस्वती भिन्न होकर भी जब मिल चलतीं,
विस्तृत सागर से मिल जातीं, भिन्न रूप वे ना रखतीं।
ऐसे ही सब जाति धर्म के लोगो, निद्रा से जागो,
फाँस काट दो शासन की, कहो भारत सबकी माई है।। युग बीत .....

आशा

बारह वर्षों तक राम गये वनवास, छोड़कर शासन को,
जनता में घुल-मिल सिखलाया, अन्याय सहो ना, इक जुट हो।
तन-मन शक्ति की वृद्धि करो, तुम अपनी रक्षा आप करो,
शासक तो रक्षक होता है, जो भक्षक बने तो दूर करो।
बारह वर्षों तक पांडव भी, बन भिक्षु रहे थे प्रांतर में,
अन्यायी शासक से बचने, अज्ञातवास भोगा उनने।
जनता के संग रह, अपनी ओर किया, धीरे-धीरे उनको,
विपुल सैन्य संग्रह करके, ललकारा लोभी शासक को।
वह समय आज फिर आया है, आशा बंधती है अब मन को,
शासक न करेंगे मनमानी, आदर देवेंगे जनमत को।
जन गण भी अब अपना दायित्व, संभालें पूरी निष्ठा से,
कैसे न बनेगा स्वर्ग हिन्द, नैतिक शासक आयें फिरसे।

समभूमि

भारतवासी! उठो आज माता दे रही दुहाई है।
पैंसठ साल बीतने पर भी समभूमि ना पाई है।।

धर्म, जाति के भेद सभी बापू संग रहकर भूले थे,
सत्ता ने पुनः उभारा है, जागो, ना चिनगारी फैले;
सबही हैं प्रभु के बंदे, उनमें न परस्पर खाई है।।
पैंसठ साल ....

दलित वर्ग कह सत्ता ने बस नीचा हमको बना दिया,
आरक्षण की भिक्षा देकर, ऊँचा खुद को उठा लिया;
हमरी आत्मा के गौरव को उनने ठेस लगाई है ।।
पैंसठ साल ....

पढ़ने-लिखने की सामग्री ना हो तो हमको देना,
जबरन योग्य बताकर हमको बैसाखी मत पकड़ाना;
समभूमि पर सभी खड़े हों, इसमें राष्ट्र बड़ाई है।
पैंसठ साल ....

कर्मतंत्र

दलित की पुकार

हमको न हिकारत से देखो, हमने तो योग्य बनना चाहा,
ज़बरन आरक्षण दे देकर, नेताओं ने निज हित साधा।
गांधी बाबा तो खींच हमें, समभूमि पर ले आए थे,
आरक्षण लाभ दिखे तो हमने वे सपने बिसराये थे।
पाँच शतक का आरक्षण भी ऊपर नहीं उठा पाया,
भिक्षा की आदत बनी, भेद पहले से हुआ और गहरा।
सबकी आँखों में दीन, हीन बनने की पीड़ा क्या होती,
समझे होते गर नेता तो ये हठधर्मी छोड़ी होती।
शोषित, दलितों के जो सच में, बनना चाहो उपकारी,
आरक्षण देओ गरीबों को, योग्यता न रोये बेचारी।
मंत्रीपद के भी लिये योग्यता के कुछ नियम बना देना,
आरक्षण से आये मंत्री भारत छवि को धुंधलायें ना।।

योग्यता बनाम आरक्षण

आरक्षण पर सब सहमत हैं, 'कैसे हो' पर मतभेद बने,
नेताजी करलो पुनर्विचार, तभी प्रतिमा तव शुभ्र बने।
आरक्षण, दलितों, शोषित का, हम भी तो यही चाहते हैं,
हैं शोषित कुछ विशेष जाति, हम बस ये नहीं मानते हैं।
आरक्षण करो गरीबों का, पढ़ने, रहने की सुविधा दो,
तुम फीसें उनकी माफ करो, कम अंकों से ना पास करो।
आरक्षण कभी नहीं करना, शिक्षा में फेल जो होते हैं,
समस्तर रखो योग्यता का तो नहीं विरोध हम करते हैं।
आरक्षण पर सोचो समझो, कुर्सी से ना निज को बांधो,
भाई-भाई में जातिगत ईर्ष्या को नहीं भड़कने दो।
आरक्षण ज़बरन ना लादो, ज़बरन तो शिक्षा दो सब को,
जीवन-स्तर तब सुधरेगा, सम्मान से जीने दो सब को।।

रथ के दो पहिये

दो पहिये होते हैं – रथ के।
इक का मुख पूरब को होता,
दूजे का रूख पश्चिम होता,
निज दिशा लगे प्रिय दोनों को,
फिर भी देखो मिल बढ़े चले।। .....
चलना ना चाहा इक दूजे की राह,
अड़े थे दोनों ही;
फाँकी थी रथ ने धूल,
बिताये कितने ही युग खड़े-खड़े।। .....
सारथि ने आकर सिखलाया,
बतलाया – चलना जीवन है;
शुभ, सुन्दर, स्वस्थ रहो तब ही,
जब घुन न लगे उसमें ज़िद से।। .....
सारथि की मानी चाकों ने,
मज्झिम निकाय को अपनाया;
अपनी संस्कृति को ना छोड़ा,
वे मिलकर आगे बढ़े चले।। .....
पूरब ने मन पूरब रक्खा,
पश्चिम ने याद पश्चिम रक्खा;
पर, संग चलना स्वीकार किया,
तब राहों के सुख माप सके।। .....

पतंग का संदेश

ऊँचे उड़कर अंबर नापा,
नीचे गिरती भू मापी थी;
मापे मेघ, हवा सब कुछ,
सब ही के अन्दर झाँकी थी।
देखा उनका फैलाव अतुल,
गरिमा में अपनी वे निश्चल;
जो काम मिला उसको ही कर,
मन की शांति रखते अविचल।
हमसे छोटे आक्रांता से,
भयभीत भला क्यों वे होवें;
पर प्राणों पर जब बन आये,
पूरी शक्ति से डट जायें।
ठुकरायें राहों के रोड़े,
मन को ना कहीं और मोड़ें;
हो तुरंत शांत खोये निज में,
कोई रेखा वहाँ न बनने दें।
जो ऊपर एक पतंग गई,
नीचे आकर वो यह कहती;
दुनियाँ वाले ऐसा जीयो तो,
स्वर्ग बने यह ही जगती।।

ठूँठ

रो रहा ठूँठ दरवाजे पर,
क्यों मुझमें न हरियाली छाई?
क्यों और सभी लहरें-झूमें,
मुझमें न कोई खुशबू आई?
आया बसन्त बेलें फूटी,
मुझमें पत्ती तक ना आई;
सब औरों को देखे जायें,
मुझ तक न कोई नज़र आई?
जड़ में हो यदि ज़्यादा पानी,
या प्यास न बिल्कुल बुझ पाई;
तब ही वह पौधा ठूँठ बने,
यह कर्म न तेरा है, भाई।।

माझी

नाव चलाये तू बस माझी! पार उतारे सब को,
आना हो वो खुद ही आता, दे न अजान किसी को। .....
पूछत नाहीं जाति-पांति, देखे ना पद, धन को,
कौन है कैसा, ले जाऊँ क्या, सोच-विचार न तुझको।....
अपनी धुन में नाव चलाता, गान सुनाता सबको,
कर्मक्षेत्र को मंदिर माना, प्रभु माना नैया को।....
कोई न हो तट पर तब भी, तैयार रखे नौका को,
कभी न पलभर चैन मिले, फिर भी ना कोसे प्रभु को।....

तेरी ही परछांई है

इक बात समझ ले तू बंदे,
सब तुझ पर ही आधारित है;
तू ही बोये, तू ही काटे,
कोई मालिक है ना माली है।
खुशियाँ दे तो खुशियाँ लूटे,
पत्थर मारे तो सिर फूटे;
कोई और नहीं उत्तरदायी,
सुख-दुःख तेरी ही कमाई है।
तन-मन को मूक रखे ना तो,
लहरें उनसे ही उठती हैं;
दूजे से टकराकर लौटें
उन तक, वे जिसकी जाई हैं।।

कर्मठ जीवन

कहते न तारे कुछ कभी, बस टिमटिमाते ही रहें,
जानें ज़रूरत हर किसी की, राह को रौशन करें।
ऊँचे गगन पर चढ़ गये पर, भूमि ना त्यागी कभी,
थलचर ही ना बातें करें, जलचर गले मिलते सभी।
अपनी न कुछ परवाह है, जीते हैं औरों के लिये,
होते नहीं हावी कभी, स्वाधीनता सबके लिये।
चलना, चमकना प्राण हैं, क्यों, किसलिये सोचें नहीं,
शिकवे भला कैसे करें, निज कर्म से फुर्सत नहीं।

महाविद्यालय–विश्व

है विश्व महाविद्यालय इक
नित सबक सीखना है इक रे,
गहन लगन, अनवरत प्रयत्न
सिखाये कुछ भी सबको रे।
जैसे हो मिट्टी में सोना,
जहाँ मिले शिक्षा ले लो,
बीता क्षण न दुबारा आए,
गहने में आलस न करो।
जग में कुछ, कोई ना ऐसा,
जो कुछ ना सिखला सकता,
खोलो बंद द्वार तन–मन के,
अहंकार सुर हो नीचा।
है अथाह सागर शिक्षा का,
नित लो तब भी खूटे ना,
धन्यवाद देना हर गुरु को,
दर्प चित्त में लाना ना।
मनोदशा ऐसी होवे तो,
लाभ छात्र ही पाता है,
होता दृढ विश्वास स्वयं पर,
सब जग अपना लगता है।
सीखा कभी न व्यर्थ होय,
जीवन आसां हो जाता है,
सारहीन कुछ भी न लगे,
आनन्द पूरित मन होता है।।

कारण–कार्य

जो जैसा बीज लगाता है,
वो पौधा वैसा पाता है;
अपवाद कभी ना संभव है,
कभी बेर न आम उगाता है।
जो मन में सोचे जाते हैं,
बाहर वो ही तो आता है;
अचरज फिर उलझे पथ से क्यों,
कर्ता पर ध्यान न जाता है?
ना भाव न कार्य वृथा होते,
जीवन उनसे ही बनता है;
कारण–कार्यों का गठबंधन,
विज्ञान सदा बतलाता है।
अपनी इच्छा जैसा ही तो,
परिवेश यहाँ जन पाता है;
प्रभु भी न बीच में आ सकते,
वह खुद ही भाग्य विधाता है।

सिखावन

कहना कमझाना व्यर्थ सभी,
फिर भी समझाये जाते हैं;
जानें, कोई ये ना मानेगा,
हम नियम बनाये जाते हैं।
खाना-पीना, चलना-फिरना,
आचार सिखाये जाते हैं;
क्या दूजे पढ़ें, कहें, पहनें,
सब ही बतलाये जाते हैं।
बन करके उदाहरण बतलाया,
निज भूलों से समझाते हैं;
बिसरें, सब मरजी से जीते,
ना दख़ल कोई सह पाते हैं।
परहित चिंतन, चिंता है व्यर्थ,
जब खुद में झांक न पाते हैं;
अपना जीवन न संवार सकें,
दूजे का बोझिल करते हैं।।

पत्रकारिता

लूट मार की एक खबर थी
गाथा सबने ही गा दी,
सबही आज बने हिंसक
इक मत से पैरवी सबने की।
सामुहिक सोच ने कच्चे मन में
रोप दिया उन भावों को,
सोचे बिन बम, तलवार उठे
हो भावहीन काटा सबको।
ये अपसंस्कृति कैसी छाई
इस पर फिर होने लगा विचार,
हम ही तो जनक थे इस सबके
वाणी-विचार की यह टंकार।
जागो अब भी अच्छा देखो
अच्छा सोचो, अच्छा बोलो,
हंसी-खुशी, संतोष-शांति की
खबरें ही बस फैलाओ।।

सहनशीलता

सिगनल ना मिला, ट्रेन रूकती, वश नहीं हमारा सह लेते,
पानी ना आया नल में तो, वश नहीं हमारा सह लेते।
नेताओं की लूट खसोट, जानकर भी सहते जाते,
झूठों पर झूठ बोलते उनको, बेनकाब ना कर पाते।
नेता और अमीर हमें आसानी से फुसला लेते,
हड़ताली और अराजक मजदूरों को सह, हम शह देते।
घर-बाहर के धोखे सहते, 'क्या काम दूसरे से हम को'
इससे नैतिक बन जायेंगे, कैसा ये छल छलता हमको?
'धरती सा सहनशील बन लो,' यह पाठ पढ़ाया जाता है,
'जो खोदे उसको माफ करो,' बस यही उदाहरण मिलता है।
'ना कहें बुराई बड़ी मगर, छोटी को तो सहते जाओ,
घर, समाज कैसा भी हो, टूटे ना यही खयाल रखो।'
बलवानों की ही दुनियाँ है, निर्बल को सब सहना पड़ता,
कर सकें न शिक्षित क्रूरों को, कोमल पर वश सबका चलता।
सहना माना अपनी नियति, क्या हमसा और कोई होगा?
करते न गिला, शिकवा न कभी, सहना फिर ज़्यादा क्या होगा?
कण-कण बुराई सहते जायें, तो इक दिन ऐसा आता है,
साम्राज्य बुराई का हमको बस चहुँ ओर दिखलाता है।
सहने की सीमा होती है, इसको हम बिसराये जाते,
लेकर शिक्षा ना राम-कृष्ण से, बस गुण-गान किये जाते।

रश्मि पथ

बंद हुए जब सब दरवाजे,
खिड़की पर तब ध्यान गया,
घना अँधेरा था घर अंदर,
दीखा सूरज नया-नया ।
घोर निराशा में आँखें बंद
करके, क्या होगा हासिल ?
देख, किरण उतरी खिड़की से,
पकड़ उसे, मत रह गाफिल ।
छोटे से इस रश्मि रथ पर,
हो सवार चल दे राही,
धरती तो क्या आसमान की,
छू पायेगा ऊँचाई ।
निकल खोल के बाहर देखो,
दुनियाँ दुःख से छाई है,
आँसूं पोंछ हँसाओ उनको,
कोई नहीं हरजाई है ।
दिल के घाव खुले रख लो,
नासूर बनें, जो बंद किया,
निकलो बाहर खुली हवा में,
पाओ जीवन नया - नया ।।

पीड़ा

पीड़ा से जग घबराता है, पर पीड़ा सच्चा सोना है,
पीड़ा बहुत ज़रूरी है, यदि महत्वपूर्ण कुछ होना है।
पीड़ा पाये, नारी प्रसव की, एक शरीर जन्म लेता,
पीड़ा यदि हो सीपी को, तब ही अमूल्य मोती बनता ।
पीड़ा जब सोना पाये, तो सभी मिलावट दूर भगे,
पीड़ा पाये अनगढ़ पत्थर, तब ही हीरा बन चमके।
पीड़ा पा अंकुर फूटे तो वही बीज फिर वृक्ष बने,
पीड़ा पा सूखे अंगूर तब उसका मेवा द्राक्ष बने।
पीड़ा पाकर पानी बनता भाप, जगत की सैर करे,
पीड़ा पाकर भाप वही, बन वर्षा जग को ठंडक दे।
पीड़ा पाकर गन्ना ही तो, सबको गुड़-शक्कर देता,
पीड़ा पाती खड़ी फसल, तब सबको खाने को मिलता।
पीड़ा पाकर संगमरमर ही, मूर्ति दिव्य बन जाता है,
पीड़ा होती लकड़ी को, फिर उससे ही सुर आता है।
पीड़ा पाई जब वारिधि ने, तब उससे अमृत निकला,
पीड़ा पाई जब दधि ने, तब ही तो उससे घृत निकला।
पीड़ा पाकर मैला कपड़ा, स्वच्छ, साफ होकर चमके,
पीड़ा पा धुलता शरीर, तब ही कुंदन सा वह दमके।
पीड़ा पाये, यदि प्रेम में, तो मजनूँ कहलाता है,
पीड़ा पा, रक्षा करे देश की, वो सम्राट कहाता है।

पीड़ा पाकर ही नानाविध, योगी सिद्धि प्राप्त करे,
पीड़ा पाते हैं जब भोगी, तब विषयों का नाश करें।
पीड़ा बिन, पत्ता ना हिलता, फिर क्यों उसको कहें बुरा,
पीड़ा देख कसमसाते क्यों, क्यों ना उसको रखें हरा ?।

ज्वालामुखी

ज्वालामुखी कैसे बनता है, कुछ-कुछ ये समझ में आता है,
'कोई जले न मेरी अग्नि से ', लौ अंतस में बंद करता है।
जब भी कोई तूफान उठे, वो उसको आत्मसात् करता,
बाहर से बिलकुल शांत रहे, भीतर कोलाहल होता है ।
जग को अंतराग्नि दिखे नहीं, वो बाहर फूल उगा लेता,
इक बार बनाई छवि ना मिट जाये कोशिश फिर करता है।
पर, अंतर्जग की सीमा है, वो जड़ यह जान नहीं पाता,
भीतर जब जगह नहीं रहती, सब उफन कर बाहर आता है।
अंतस का लावा, लौ सब कुछ, जोरों से शोर मचाता है,
कहीं बंद मुझे फिर ना कर दे, तेजी से बाहर आता है ।
'परिवेश बचाना चाहा था, उस पर ही अब बहता लावा,
शांति चाही थी, फिर कैसे, ये राज अशांति छाया है?'
क्या ऐसा ना होता वो जो, ज़बरन मन को मारा करता,
अपने या जग के खातिर, संवेग को दाबा करता है?
अंतस हलचल करता रहता, बाहर से कुछ ना दिखता है,
ज्वालामुखी ऐसे बनते हैं, कुछ-कुछ ये समझ में आता है।।

इक रावण को ही नहीं राम ने बालि को भी मारा था,
अपने प्रति ही नहीं, दूसरे पर अन्याय न धारा था।
केवल मामा का नहीं, पूर्ण कौरव जाति का नाश किया,
अन्याय मूल से ही काटो, वंशीधर हमको सिखा गया।।

बचपन का पुनरागमन

छात्र बनूँ बच्चों की, मन में, भाव यही गहराया है,
प्रेम, सरलता, क्षण-क्षण जीना, सीखूँ, मन को भाया है ।
छोटी-बड़ी सभी चीजें, अचरज से देखे जाऊँगी,
जड़-चेतन का जनक एक, सारा जग अपना मानूँगी।
रंगीन तितलियों के पीछे, वन-उपवन में मैं धाऊँगी,
पल में कट्टी, पल में दोस्ती, मन में ना मैल जमाऊँगी।
पेड़ों से सीखूँगी देना, नदिया से बहना सीखूँगी,
फूलों सी खिल खुशबू दूँगी, काँटों सम रक्षक बन लूँगी।
तारा बन राह दिखाऊँगी, मिट्टी बन पौधा सिरजूँगी,
कीचड़ बन कमल खिलाऊँगी, जीवन है व्यर्थ, न मानूँगी।
कल-कल झरने सी बोलूँगी, सन-सन वायु सी डोलूँगी,
अग्नि बन व्यर्थ जलाऊँगी, बन नभ रंगों को छाऊँगी।
प्रभु! कब, कैसे इन सबको हम, आँखों से ओझल कर देते?
बचपन को यदि जीयें फिर से, तो जग को स्वर्ग बना सकते।।

सुख-सुविधा के सामान जुटाने,
में हरदम उलझे रहते।
यात्रा कैसे आनंद देवे,
नवपथ से दोस्ती ना करते।।

मज्झिम निकाय

हलवा इतना नरम बना, कोई छोड़े ना सब खा जायें,
लोहा इतना गरम हुआ, कोई छुए ना सब हट जायें।
गैया इतनी है भोली, सब मूर्ख बना दुहते जायें,
बड़बोली चालाक लोमड़ी, साथी नहीं बना पाये।
राजा सिंह बना मँहगा, कोई ना बोले, न पास आये,
बनी बंदरिया सस्ती तो, सब लोग नचाते ही जायें।
बगुले की गंभीर मुखाकृति, सदा ऊब पैदा करती,
चिड़िया की हरदम चींचीं, उस पर न ध्यान देने देती।
जीव जगत औ वस्तु जगत् भी यही बताते हैं हमको,
'मज्झिम निकाय' को अपनाओ,
सुख-शांति से रहना हो तो।।

भाग्य औ क्षमता

जिनका भी जिनसे भाग्य जुड़ा,
वो उनको मिल के रहते हैं,
ना लिखा भाग्य में हो गर तो,
मिलते-मिलते खो जाते हैं ।
बिन आँखों, कानों, हाथों औ
पैरों के भी जी लेते हैं,
कोई न भरोसा करता तब,
जीने से क्यों कतराते हैं ?।
किसका क्यूँ करें शिकवा औ गिला,
खुद हम ही कारण होते हैं,
तक़दीर हमारी है कारण,
दूजे बस माध्यम होते हैं ।
पर, कुदरत खुद ही ना करती,
हम ही उससे करवाते हैं,
सब भाव-विचार हमारे ही,
बन बंधन भाग्य बनाते हैं ।
ईश्वर ने हमको मेधा दी,
उसका उपयोग न करते हैं,
मन आगे-पीछे ही चलता,
क्षण-क्षण जीना हम भूले हैं ।
बीते सुख-दुःख पीड़ा ना दें,
ना आने वाले ही दुःख दें,
अपने पै भरोसा हो हमको,
तो लघु क्षण भी सार्थक कर दें ।।

अनचीन्हे पथ

साहस क्यों न संजोते,
नव पथ पर चलने से क्यों डरते?
जाना चीन्हा ही ठीक कहें,
क्यों मन को झुठलाते रहते?
क्यों मन में होती आशंका,
नव अनजाने, अनचीन्हों से?
शायद, हम समझे हैं कि,
परिचित पथ ही अच्छे होते।
तन-मन की हो प्रगति कैसे,
घेरे में ही चक्कर खाते।
हीरों से हाथ भरें कैसे,
जब कंकर छूट नहीं पाते।
वस्तु ही नहीं, लोगों को भी,
पकड़े बैठे हैं हम कसके।
तड़फड़ करते बंधन में पर,
मैत्री न अजानों से करते।
भय से ही भरा है क्यों दामन,
विश्वास नहीं क्यों कर पाते?
खुद पर न भरोसा है, तो कैसे
यायावर सम चल पाते?

कर्मफल

कभी न दान दिया हो तो फिर दान नहीं पाओगे,
मदद ना की हो कभी किसी की,
मदद न ले पाओगे।
मीठे बोल न बोले हों,
तो कैसे सुन पाओगे?
प्यार न बाँटा हो यदि तुमने,
प्यार नहीं पाओगे।
जो दोगे सो ही पाओगे,
ना दो तो ना पाओगे,
जग का नियम सदा से है ये,
मिटा न तुम पाओगे।

मोह

फिर-फिर के वही भूल न कर मन,
बाँध न बंधन मोहों के।
वही कलपना वही तड़पना,
पाश नहीं वे खुशियों के।।
सोच-कर्म औरों से सिमट ले,
जैसे अंग हों कछुओं के।
हो न प्रभावित औरों से,
निज देह समझ बिन प्राणों के।।
इकला हो तब तू रह लेना,
बिन विचार औ भावों के।
हो समीप कोई तो बहाना,
झरने प्रेम औ करूणा के।।
सारा जग ही तेरा है,
खोजे क्यों कोने अपनों के।
मूढ़ न दौड़ बूँद के पीछे,
ढ़ेर लगे हैं झरनों के।।

ज़िन्दगी

ज़िंदगी को पकड़ना न कसके कभी,
हाथ से एकदम वो फिसल जायेगी।
जो हो मुट्ठी खुली तो नई नित हवा
ताज़गी देके उसको जिला जायेगी।।
ज़िंदगी को न ठहराना इक ठांव पर,
काई जम के बू उससे घनी आयेगी।
जो बही जायेगी वो ही दरिया के सम,
वैसी ही पाक, खुशहाल रह पायेगी।।
ज़िंदगी पै लगाना न बाड़ें कभी,
कसमसायेगी वो, फैल ना पायेगी।
हो उन्मुक्त तो अग्नि शक्ति के सम
ऊँचे ही ऊँचे उठती चली जायेगी।।

धर्म

सत्य प्रतीति

पहले सोचे, फिर मुँह खोले,
तो वही दिमागी बात है,
बिन सोचे-समझे जो कह जाँयें,
वो ही दिल की बात है।
पहली ना सच होती कभी,
दूजी न कुछ सच के सिवा,
यदि जानना चाहो किसी को,
तो सुनो दिल की सदा।
बहतें हो हम जब भाव में,
मुश्किल में या इक दम घिरें,
बोलें, करें जो तब वहाँ,
हम हैं वही, यह ही गुनें।
छोटी सी यह बात सदा,
दिल की परिचायक होती है,
व्यक्ति का सही परिचय देती,
यह ग़लत कभी ना होती है।।

अभी और फिर

भला काम जो करे अभी ही,
बुरा टाल दे कल पर,
पछतायेगा वो न कभी,
चल सके अगर इस पथ पर।।
कर लो प्यार अभी ही,
ईर्ष्या-घृणा टाल दो कल पर,
छिटका देगा प्रेम घृणा को,
कल तक बचे न कण भर।
कहलाता इन्द्रिय संयम यह,
दुर्भावों में नहीं बहो,
आयेगा समभाव तभी जब,
उनमें गति करना छोड़ो।।

सर्व स्वीकार

लिखे भाग्य में काँटे विधि ने, दूर न हम कर सकते,
पर, यदि गिला करें ना उसका, फूल हमीं में खिलते।
दिये स्वतंत्र प्राण हमको, रक्षा के लिये दिये काँटे,
सोच यदि यह गहरी हो ले, जीव न कोई भरमाते।
व्यर्थ नहीं कुछ भी दुनियाँ में, है महत्त्व कूड़े का भी,
पलें जीव छोटे इस पर, बन खाद अन्न भी देता ही।
जैसे हैं, स्वीकारें सब को, तुलना होती व्यर्थ सभी,
प्रभु ने सोच-समझ कर सिरजा, ना भूलें अपनी हस्ती।।

तीरथ–पर्व

तीरथ को जाते हैं यात्री,
सकुशल वापिस आ पायेंगे,
धुक–धुक, धुक–धुक मन करता है,
रेवड़ में कुचल ना जायेंगे?
आए दिन पढ़ते, सुनते हैं,
दस–बीस वहीं खप जाते हैं,
पर्वों पर भीड़ बढ़े जाती,
सब पाप कर्म धुल जाते हैं?
क्या खास जगह और खास समय ही,
प्रभु पृथ्वी पर आते हैं?
कण–क्षण में जब प्रभु होता है,
क्यों तीरथ पर्व बनाते हैं?
विज्ञान–ज्ञान तो खूब लिया,
आध्यत्म ज्ञान ना लेते हैं;
हर रोज दिवाली–होली है,
हम खुशियाँ क्यों न मनाते हैं?

अप्पो दीपो भव

कमल, गुलाब, जुही जो कुछ हो,
वो ही बन खिल पाओगे,
कोशिश की दूजा बनने की,
तो बन त्रिशंकु रह जाओगे।
दूजों को भी आज़ादी दो,
तब ही आज़ादी पाओगे,
व्यक्ति वस्तु ना होता है,
बाँधो, खुश ना रख पाओगे।
जलधर, लहरों, चट्टानों, भंवरों,
का क्यों गिला तुम करते हो?
बुद्धि, नैया मालिक ने दी,
नाविक, क्यों भूले जाते हो?
प्रत्यारोपों की भूल–भूलैया में,
न भुलाओ अपने को,
तुम राह देख पाओगे तब,
जब खुद से आखें चार करो।
कोई और न राह सुझा सकता,
तुमको खुद ही पथ चुनना है,
औरों के नयन, पग काम न दें,
देखना स्वयं ही चलना है।
इक लक्ष्य सामने रख दृढ़ कदमों से,
उस ओर बढ़े जाओ,
पथ स्वयं नये खुल जायेंगे,
धीरज, साहस मन में लाओ।

मतभेद

देश-प्रेम या भ्रातृ-प्रेम,
ना आज किसी में दृढ़ता है,
भाई-भाई लड़ते दिखते,
स्वारथ ही ऊपर आता है।
पत्नी या दोस्त कलहकारी
कहते, उनने सिखलाया है,
चिनगारी जो ना हो भीतर,
तो शोला भड़क न सकता है।
कोई खुश ना है दुनियाँ में,
औरों को खुश ना देख सकें,
मतभदों को झगड़ा कहकर,
सबने मन को भरमाया है।
व्यक्ति में भी पल-पल, छिन-छिन,
मतभेद हुआ ही करते हैं,
क्या वो अपने टुकड़े करता,
उनके संग में ना जीता है?
वैचारिक मतभेदों को हम,
दैनिक चर्या में क्यों लाते?
पाले व्यवहार प्रभु ने भी,
उनको न कभी झुठलाया है।।

परिवर्तन

जीवन बस ऐसे ही चलता, शीत कभी है, ताप कभी,
हँसना-रोना संग रहें नित, राग-विराग साथ में ही।
वही रोज दुहराता रहता, सही-गलत जो कुछ भी हो,
जीवन ना बदले पथ अपना, बस चक्कर ही काटे वो।
एक बात अब समझी, चरम बिंदु ही परिवर्तन लाता,
जम कर पानी बर्फ बने, उबले तब ही, भाप बनता।
थोड़ा-थोड़ा गर्म होय तो पानी भाप न बन सकता,
चरम बिंदु तक ठंडक ना हो तो वो बर्फ नहीं बनता।
ऐसे ही हैं भाव हमारे, चरम बिंदु पर वे बदलें,
क्रोध हिलाये जब तन-मन को, करूणा प्लावित जन हो लें।
द्वेष, राग को पैदा करता, चरमबिंदु जब आ जाये,
लोभ, दान बन जाता है, जब मुठ्ठी ना बंधने पाये।
भावों का खेला है यह जग, कैसे वेग सहें उनका?
मनन-ध्यान में उनका यह उत्कर्ष क्या नहीं हो सकता?
या फिर कर्म चुनें उनके हित, जहाँ वेग वे पा जायें,
क्रोध लगे संग्रामों में औ लोभ दुकानें खुलवायें।
निज पर रखें नज़र फिर नित ही, तब वह क्षण आ पाता है,
कौंधे बिजली, सब साफ दिखे, बदलाव वहीं पर होता है।
पर रहे ध्यान, झूठों से तुम, अपने को मत बहला लेना,
सच की तीक्ष्ण नज़र से नित, अपने को नहलाते रहना।
संत बनें तब ही अशोक, अंगुलिमाल भिक्षु बनते,
साध्वी बने आम्रपाली, वाल्मीकि से साधु बनते।।

विकृत उत्सव?

होली हो या दिवाली हो, इक बार साल में मनती है,
पर दिखे, आज चहुँ ओर हमें, हर रोज दिवाली, होली है।
देखो, पंचतारा होटल में, यूँ दस्तरख्वान सजे रहते,
उद्योगपति, मंत्री के घर, जगमग-जगमग करते रहते।
सजी दुकानें गहनों, कपड़ों, खेल-खिलौनों, जूतों से,
लग रहीं कतारें अंतहीन इन वायुयान यात्रियों से।
जाने क्यों कहता फिर भी जग, भारत में बहुत गरीबी है,
दिखे आज चहुँ ओर हमें, हर रोज़ दिवाली-होली है।
चारों ओर नवोढ़ाओं, बेकारों की जानें जलतीं,
चौराहों पर शिव, सत्, सुंदर की देखो होली जलती।
प्रेम रंग है सहमा, सोचे कौन सुनेगा ये तूती,
मद, मोह, काम, ईर्ष्या, रंग ले, खेल रहे सब मन चीती।
धर्म, जाति, धन भेद भुलाकर, कौन खेलता अब होली,
यों हर दिन, हर गली, चौराहा, लहू से खेल रहा होली।
फिर भी हम कहते ना थकते, होली खुशियों को लाती है
मुझको तो दिखती आज यहाँ, उत्सव बस मन की विकृति है।।

कर्म-कांड

हम पाहन मूर्ति धोते हैं, प्रभुकृपा दृष्टि हो जायेगी,
कुछ दान-पुण्य भी कर देते, लक्ष्मी हमको मिल जायेगी ।
माला फेरें, प्रभु नाम जपें, दिखला-दिखला कर पाठ करें,
तप-यज्ञों में लाखों खरचें, प्रभु दान-दृष्टि हम पर कर दें ।
पर, दान उसे ही देते हैं, जो काम हमारे आता है,
वह ही वस्तु दी जाती है, जिसका उपयोग न होता है ।
जिव्हा से प्रभु का नाम जपें, मन-नेत्र नहीं उस पर रखते,
पत्थर मूर्ति धोने वाले, मन की ना मैल हटा पाते ।
सब में प्रभु है, इक ओर कहें, नौकर को बासी देते हैं,
बर्त्तन, बिस्तर सब अलग रखें, न्हायें पर साफ ना होते हैं ?
पूजा का आयोजन करते, पर अर्चन सब ना कर सकते,
वह तो यजमानों की अधिकृत, कैसे चाकर शामिल होते?
जब खाली पेट कई सोते, तब प्रभु को छप्पन भोग लगे,
घंटों तक भक्त खड़े रहते, कुछ जब चाहें दर्शन करते ।
घर, मंदिर सब ही जगहों में, प्रभु मूर्ति मैली कर डाली
आत्मा ना बसती अब उनमें,कैसे पूजूँ मूरत खाली ?
भूलें ना उसको याद रखें, सब कर्मकांड इसलिये बने,
पर, प्रभु ना दीखे जब सबमें, तब ज्ञान, भक्ति सब व्यर्थ हुए।।

संवेगों की पूर्णता

मनो धर्म हैं राग-द्वेष, इनसे कोई दूर रहे कैसे?
नर में नारी, नारी में नर है, अलग नहीं ये हो सकते।
मन के भले भाव के साथ, बुरा भी सतत रहा करता,
बुरे भाव वाले में भी, कुछ अच्छा भाव सदा मिलता।
है न नियम तो कैसे विश्वामित्र, मेनका से हारे?
दाँव चढ़ाकर पत्नी, धर्मयुद्ध करते पांडव सारे?
कर्ण त्याग में कुन्ती और सूर्य मन लक्षित होता है,
पत्थर बनी अहिल्या में, इन्दर का पाप झलकता है।
कौरव सेना के सेनानायक भीष्म, नहीं यह जँचता है,
परशुराम का फरसा भी नित यही बात दोहराता है।
सीता की अग्निपरीक्षा और त्याग-गाथा क्या कहती है?
वाल्मीकी की जन्मकथा भी मन से बिसर न सकती है।
जब जो भी संवेग उठे पूरी शक्ति उसको दे दो,
पूरा देखो, पूरा जीओ, प्रभु उतरे बस मारग दे दो।

लेना-देना

गँध बाँटना चाहूँ लेकिन लेने वाला नहीं मिले
देना चाहूँ दान, सुपातर कोई भी तो नहीं दिखे।
अनुभव देना चाहूँ परंतु सुनने वाला ना मिलता,
जो आता सिखलाना चाहूँ, सीखे जो ना मिल पाता।
आलम्बन की चाह गलत है, दोनों हाथ उलीचे जा,
अपना जब कुछ नहीं जगत में, देने की फिर चाह कहाँ?
देने वाले में अहम्भाव कुछ ज़्यादा ही हो जाता है,
'मेरा है, मैं रहा बाँट' में, अहोभाव ना आता है।
बाँटो गंध, दान-अनुभव दो या फिर शिक्षा ही दो तुम,
ध्यान रखो व्यक्ति विशेष का आश्रय कभी न लेना तुम।
मेरे हाथ सदा नीचे हैं, लेने वाला समझेगा,
सम्मान मिला ना जो उससे, देने वाले को अखरेगा।
जब मन की मौज जहाँ आए, देने वालो देते जाओ,
'मेरा है' 'काम आएगा ये', उसको इस कारण से मत दो।
देने-लेने के भावों को, पीड़ा का जनक बनाओ ना,
रीतों को बाँध बनाओ ना, जीवन बहता है, बहने दो।

धैर्य

धीरज धर ले, ऐ मन मेरे,
धीरज पर जीवन आधारित।
धीरज से ही तन ये बढ़ता
धीरज से ही मन सचु पाता।
धीरज से हो काबू घोड़ा,
धीरज ने टूटा घर जोड़ा।
धीरज बिन रहना हो कैसा,
धीरज बिन सहना ना होता।
धीरज रखती जब ये धरती,
फल-फूलों को पैदा करती।
धीरज जब नारी ने धारा,
खेले गोदी बाल-गोपाला।
धीरज धर कर जलने पर ही,
दमके सोना पा के शुद्धि।
धीरज रखती गंगा तब ही,
मीलों दूर समुद से मिलती।
धीरज तो होता अमृत सम,
छोड़ उसे जीवन हो विष सम।
धीरज रख क्यों ना सुख पायें,
क्यों विष पीयें और पिलायें?
'धीरज क्यों ना दूजा रखता',
भाव यही करता दुःख पैदा।
धीरज रख सुख लें हम निज ही,
अपना वश बस अपने तक ही।।

सिक्के के दो पहलू

नदिया-भंवर साथ ही रहते, पर्वत-खाई साथ-साथ,
सुख-दुःख का है संग सदा, दिन-रात रहें बस पास-पास।
बिन कीचड़ कमल न हो सकता, बिन काँटा रहे गुलाब कहाँ,
गीधों ने पाई दूर दृष्टि, पर भक्षण शव का करें यहाँ।
पेड़ हरा छाया देता, पर रात्रि में विष उगले है,
हिमपात करे नभ ही, ठंडी चांदनी उसीसे फैले है।
प्राकृतिक वस्तु की अच्छाई को तो, हम सब ले लेते हैं,
नुक़सान करें जो उन तत्वों से भी, बचकर रह लेते हैं।
कुछ हानिकर तत्वों के कारण, नहीं भले को तजते हम,
कैसे उसका उपयोग करें, मिलते सुझाव हमको तत्क्षण।
मानव भी आया है प्रकृति से, दोनों तत्व रहें उसमें,
क्यों पक्षपात करती बुद्धि, इक तत्व प्रमुख माने उसमें?
दोनों पहलू ना हों जिसमें, वह सिक्का खोटा होता है,
पर बुरा काट फैंके अपना, जन तभी क्यों स्वीकृत होता है?
पर, ऐसा कभी न हो सकता, घुन, गेहूँ संग-संग पिसते हैं,
खाई छोटी करना चाहें, पर्वत छोटे हो जाते हैं।
जिसमें जो अच्छी बातें हैं, उनके संग ही रहना सीखें,
बुरी बात से बच निकलें, उस पर ना खड्ग प्रहार करें।
सामने हमारे आये जब, हम करते जायें अनदेखा,
हावी ना उसको होने दें, ना करने दें निज मन मैला।।

आनंद पथ

एक ही धर्म

सारा जहाँ है अच्छा, सबसे है भाईचारा।
बंदे हैं सब ही उसके, इक ही पिता हमारा।।
पशु-पक्षी, नर औ नारी, इक रूप-रेख सबका।
अग्नि, भू, वायु, नभ, जल, कहे कौन, है हमारा।।
इक भाँति सब ही जन्में, इक भांति ही मरें सब।
इक सी ही माँस-मज्जा, इक सा लहू हमारा।।
ईसा हों राम, नानक, मुहम्मद हों या जरथुस्त।
चीन्हा उन्होंने निज में, सब में बहे वो धारा।।
सौ जाति इक धरम की, सौ धर्म पथ हैं उसके।
न लड़ेंगे पथ की खातिर, चलें उस पै जो पियारा।।
बुत, सबद, क्रॉस, अग्नि में सब ही जिसको खोजें।
हर कण में जब दिखे वो, झलके छवि पियारा।।

केवट

क्यों आँख चुराते हैं सच से, मन-मीत न कोई मिलता है,
आते हैं अकेले दुनियाँ में, जाना भी अकेला होता है ।
इस-उस पर आस लगाते हैं, पर आस न पूरी हो सकती,
हैं सभी भिखारी दुनियाँ में, दानी कैसे मिल सकता है ?
दो पल के साथी मिल जाते, जीवन-साथी ना मिलता है,
जब खुद को ना पहचान सकें, दूजों से कैसा रिश्ता है?
धन-पद को ही तो पूछें सब, मन, भाव कद्र ना पाता है,
हमसफर कोई मिल जायेगा, मृग-मरीच जिलाये जाता है ।
पच-पच हारे रहबर न मिला, मन सोच में डूबा जाता है ,
क्यों, किसका गिला करें रे हम, इक अल्ला रहबर होता है ।
दूजों के मत की जीवन में, क्यों फिकिर सदा करते रहते,
कोई और न पार लगा सकता, खुद केवट बनना होता है ।।

गीता-ज्ञान

जग की खातिर क्यों रोता बंदे,
होना है सो ही होगा,
अच्छा ही हुआ, हो रहा है,
आगे भी होवेगा अच्छा।
क्या संग लाये जो खोया है?
क्या पैदा किया जो नष्ट हुआ?
जो लिया यहीं से लिया, गया,
तो अब दुःख करते हो किसका?
जो आज तुम्हारा धन है वो,
कल और किसी का ही धन था,
परिवर्तन एक नियम शाश्वत,
कल और किसी का होवेगा।।

खोजो जो अच्छाई सबमें,
तब ही तुम यह जानोगे।
सृष्टि बनी है सत्, शिव, सुन्दर,
'धन्यवाद' कह पाओगे।

प्राकृतिक विधान

है धूप अभी और छाँव अभी,
है दिवस अभी और रात अभी,
सिक्के के हैं ये दो पहलू,
इक अभी दिखा इक छुपा अभी।
दिन होने पर ना ये भूलें,
कोने में छुपी वह रात खड़ी,
रात्रि में न हम ये बिसरायें,
ले थाल सुनहरी भोर खड़ी।
नर कर पाया, ना कर सकता,
वश में प्राकृतिक विधान सभी,
हर पल बस यही याद रख लें,
जीवन है प्रकृति की छवि।

परवश मन

लेटे रह कर शर शय्या पर भी,
भीष्म न मन से छूट सके,
ना भूल सके अतीत को ना,
कल्पना भविष्य की छोड़ सके।
मन को वश में कर रक्खा था,
पर मन को त्याग नहीं पाये,
प्रतिबिम्ब न पड़ पाया उनमें,
दर्पण ना खाली रख पाये।
फिर मेरी तो बिसात ही क्या,
ज्ञानी, ध्यानी मन से हारे,
क्यों निज को कोसे जाती हूँ,
मन भी है दान उसी का रे।।

विलोम

होड़ मच रही यहाँ सभी में, पाप पुण्य में, दुख सुखमें,
लोभ-त्याग में, प्रेम घृणा में, सुर असुरों में, भूमि गगन में।
संत, देव पच पच कर हारे, हटा सके ना पाप भूमि से,
पापी, असुर भी अपने बल से, मिटा सके देवत्व न भू से।
सदा संग रहें काले-उजले, प्रभु भी अलग नहीं कर सकते,
सतयुग, त्रेता, द्वापर युग भी, इसी कथन को दुहरा देते।
क्यों सोचूँ विकृति क्यों आती, क्यों ना होती क्षार सदा को,
क्यों निसर्ग से सीख न पाती, रचा देव ने ही विलोम को।।
नित अंधियारा है आवश्यक, यदि प्रकाश को लाना हो तो,
राम-कृष्ण ना हो सकते हैं, रावण-कंस नहीं होवें तो?

करणीय कार्य

कभी नहीं पछताओगे,
गर पूर्ण शक्ति से कार्य करो,
पछतावा न कभी होगा,
जो दीन-दुखी पर दया करो।
देख-भाल कर कदम उठाओ,
कभी नहीं पछताओगे,
सोच-समझ कर मुँह खोलो तो,
कष्ट कभी ना पाओगे।
सिद्धान्तों से नहीं डिगो तो,
संतोषी मन पाओगे,
काना फूसी नहीं करो तो,
दुःखी कभी ना होओगे
पछतावा न कभी होगा जो,
शत्रु से ना घृणा करो,
सुख पाओगे तब ही, जब
तुम सबके प्रति उदार रहो।
क्षमा माँग लो भूलों की तो,
मन शांति पा जायेगा,
बनो सहारा औरों का तो,
जीवन सफल कहायेगा।

उन्मुक्ति

हैं पास तुम्हारे प्रेम के हीरे,
पथ उनसे रौशन कर लो ।
करना ना बन्द तिजोरी में,
रवि कर से लाख गुना कर लो ।।
उन्मुक्त फूल ही गन्ध बिखेरें,
मन-बुद्धि मुक्त आनन्द देवें ।
परदा क्यूँ, कैसा, है किससे,
हर कण में वही, दर्शन कर लो ।।
बिन खुले, भरें ना नद-नाले,
बिन खुले, घाव ना भर पायें ।
होंगे प्रगाढ़ संबंध तभी,
जब मन खोले, सब ही से मिलो ।
उन्मुक्त हँसी ना कुंद होय
कैसे, बच्चों से यह सीखो ।
पल में झगड़ा, पल में दोस्ती,
बांधो न गाँठ, प्रतिक्षण भूलो।।
ना भेदभाव हो, ना दुराव,
सबको ही प्रेम, श्रद्धा दे दो ।
नभ सा विस्तृत दिल का आँगन,
हो सबके हित, पल-पल जी लो ।।

प्रकृत जीवन

सरल स्वाभाविक होता है
या प्रकृत सरल ही होता है।
हम क्यूँ जाते हैं मुश्किल पर,
वह निज स्वभाव ना होता है।
जिस पथ पर चलें सरलता से,
मन में उमंग उत्साह लिये।
बालकवत् जिस पर रहते हैं,
बिन छल, ईर्ष्या या दुराव किये।
वही स्वभाव अपना होता,
उस पर चलना श्रेयस्कर है।
मुश्किल में तुलना होती है,
तन-मन की वह ना हितकर है।
जो सरल स्वभाविक निज को हो,
वो ही पथ अपना होता है।
अंदर-बाहर के स्वर सम हों,
कृत्रिम जीना ना होता है।
कृत्रिमता में सुख-शांति कहाँ,
रंग उड़ न जाय है भीति वहाँ।

राहें

साफ और चिकनी राहें,
क्या मंजिल पर पहुँचायेंगी?
हिमपर्वत पर चढ़नेवालो,
पग-पग खुशियाँ दे पायेंगी?
डरता-डरता इक डग भरता,
दस डग पीछे ना आ जाऊँ।
फिसलन पर ही सब ध्यान धरा,
रमणीय छबि न देख पाऊँ।।
मरूथल में साफ राह दिखती,
उस पर भी तो ना चल पाऊँ।।
संभल-संभल कर डग भरता,
कहीं अंदर ना मैं धंस जाऊँ।।
टेढ़े-मेढ़े ऊबड़-खाबड़,
रास्तों पर चोटें लगती हैं।
पर देखें दृश्य मनोहारी,
जीवन-भीति ना होती है।।
पर्वत चढ़ना आसान लगे,
पत्थर में पैर फँसा लेते।
बीहड़ बन ना भयभीत करे,
पशु, पक्षी, पेड़ मित्र बनते।।

सुथरी चिकनी राहों की ही,
अभिलाषा तुम क्यों करते हो?
राह देख ऊबड़-खाबड़
डर कर क्यों पीछे हटते हो?
दुःख, कष्टों से घबराओ क्यों,
वो तो पथ है उपलब्धि का।
सुख-सुविधा की राह नहीं,
देती गाना, उन्मुक्ति का।।

सहज राह

कल-कल, छल-छल झरना बहता,
दुनियाँ के लोगों से कहता।
चलते जाओ मस्ती से तुम,
है जीवन खुद पथ निर्माता।
नीचे ही गिरता जाता पर,
रस सिंचित भूमि को करता।
चल न सकें, उन चट्टानों का
परिचय, गति से करवा देता।
सहज राह पर चलता-चलता,
विस्तृत सागर में खो जाता।
चाह नहीं इत-उत जाने की
चल निज पथ पर तुष्टि पाता।।

पतिव्रताओं में द्रोपदी का, नाम सदा ही हम लेते,
क्वांरी कुन्ती ने जना कर्ण, पर कोई भी न उसे कोसे।
भूत-प्रेत के साथ रहें, फिर भी शंकर शिव कहलाते,
काली के रूप भयानक को भी, त्रिपुर सुन्दरी हम कहते।
सत् की स्वीकृति शिव, सुन्दर होती, जिसमें भी वह मिल जाये,
'है' को छुपा, करे अस्वीकृत, तब ही बुरा कहा जाये।।

विलोम

जिसने घृणा न जानी, वो प्यार नहीं कर पायेगा,
जिसने रोना ना जाना, वो कभी नहीं हँस पायेगा।
लोभ भावना रही नहीं तो त्याग कहाँ से आयेगा?
क्रोधाग्नि में जला न हो, वो शांति कैसे पायेगा?
पर्वत बनने के साथ-साथ, खाई भी जन्म लिया करती,
हो अँधियारा घनीभूत जब, दिवस रोशनी तब होती।
झुलसे तन जब गर्मी से, तब ही वर्षा ठंडक देती,
पतझड़ में हुआ वीरान नहीं, तो नव कोंपल कैसे उगती?
सदा संग रहते विलोम, सृष्टि का रूप यही होता,
इक के बिन दूजा रहे नहीं, यह गठबंधन शाश्वत होता।।

ताज़गी गंध औ अनुपमता,
कृत्रिम गुल में पा सकें कहाँ।
कांटा सुंदर उपयोगी है,
मैं फूल बनूँ क्यों चाह करे।
फूलों के बाने में लिपटे तो
उभय लोक का नाश करे ।
फूलों में छिप ना सदा सके,
लांछित जग से वो होवेगा।
स्वीकृत ना करके वह निजको,
प्रभु अनुकम्पा ना पायेगा।
'भला-बुरा जैसा तूने गढ़ दिया,
मुझे वह स्वीकृत है।
ओढूँ न भेड़ की खाल यदि
भेड़िया ही मेरी नियति है।
न बनूँ प्रवंचक, हे प्रभु मैं,
इतनी शक्ति बस दे देना ।
तेरी कृति को पहचान,
करूँ उसका आदर, भक्ति देना'।।

स्व स्वीकार

जैसे हैं हम, यदि वैसे ही, अपने को स्वीकार करें,
निन्दा-स्तुति हो बेमानी, ना दुराव का यत्न करें।
दुनियाँ हमको अच्छा माने, हम दोष छुपाये जाते हैं,
पर दोष न कभी दूर होते, वे और उजागर होते हैं।
शुभ को सदा बताते फिरते, अशुभ नहीं सुनना चाहें,
तभी न विकसित हो पाते हैं, और गर्त में गिरा करें।
अपने से आँखें चार करें, तो ही सच्चाई दिखती है,
दोष प्रकाशित होवें तो उनसे मुक्ति मिल सकती है।
जो सत्य देख पाता निज में, वो दिव्य दृष्टि पा लेता है,
जो जैसा है दिखता उसको, कोई भी छुप ना पाता है।
करूणाकर वह दोष बताता, और उपाय सुधारों के,
दोषी मन समझे अहम् इसे, प्रेमी पहचान करे उससे।
संबंध बने निज से पहले, तब ही दूजे से बन सकता,
अपनी आँखों में हों सच्चे, मन पर कोई भार नहीं रहता।।

अच्छा और बुरा

अच्छे-बुरे साथ ही रहते, सिक्के के दो पहलू सम,
जो पलङा भारी हो जाता, वैसा ही कहलाता जन।
दोनों का संग-साथ न छूटे, भले जतन कर लो नाना,
ना तो कोई निपट भला है, नहिं बुरा, ऐसा जाना।
अवतारों औ देवों में भी रही बुराई यह जाना,
वर के भागी दानव भी थे, यही सदा हमने माना।
दुर्वासा को ऋषि कहा, रावण को भी साधु माना,
हनुमान बने थे देव यहाँ, कर्मों के बल हमने जाना।
इन्द्रियजित होकर भी विश्वामित्र, मेनका से हारे,
पर कारण यह बड़ा न था, वे रहे ऋषिपद को धारे।
देकर वचन फिरें यह तो रघुकुल की रीति रही नहीं,
फिर भी तो दशरथ के मन में, पक्षपात बस रहा कहीं।
वैश्या साध्वी बनी और डाकू भी बना ऋषि कैसे,
मन में शुद्ध भाव ना थे, तो काया पलट हुई कैसे?
हरजाई होकर भी माधव, सदा यहाँ पूजे जाते,
छिप कर वार किया बालि पर, फिर भी राम हमें भाते।
पांडव का साथ दिया प्रभुने, जब जुआ खेलने की लत थी,
देव इन्द्र के कामीपन से, सारी दुनियाँ परिचित थी।

दुःखी मन और बादल

बादल गरज गरज कर बरसे,
पर ना बरस सका मन मेरा।
रिमझिम-रिमझिम बूँदों के संग,
गा न सका पीड़ित दिल मेरा।
बादल! बूंदों के मिस क्या तुम,
अपने मन की व्यथा कह रहे?
या कि दुःखी हो प्रिय वचनों से,
दग्ध हृदय को शांति दे रहे?
नहीं, नहीं इस विस्तृत तन में,
एक विशाल हृदय ही होगा।
इन छोटी छोटी बातों से,
भला तुम्हारा क्या बिगड़ेगा?
तो तुम क्यों पानी बरसाकर,
अपने को रीता करते हो?
क्या तुममें कुछ नहीं तुम्हारा,
क्यों सब ही जग को देते हो?
यह संसार निपट स्वार्थी है,
अहसान न कुछ भी मानेगा।
हो जाओगे जब रीते तुम,

मन शक्ति

बन चली हैं अनकों प्रशाखा जहाँ,
तोड़ दे या उठा दे दीवालें वहाँ।
ना तो मन ये तेरा बह वहीं जायेगा,
उन लकीरों को ही ये तो गहरायेगा।
हों वो प्रेम पगीं तो नहीं छेड़ना,
ईर्ष्या-द्वेष भरी हों तो मुख मोड़ना।
मन को ऐसे बनाया जो साथी यहाँ,
वह ही पहुँचायेगा, होगा ब्रह्म जहाँ।
मन तो शक्ति है विद्युत सी, जल सी अरे,
काम ले लो वही, जो कि तुमको रूचे।
दास है वो, समझना न मालिक उसे,
सुन लो स्वर भी ज़रा, अपनी आत्माओं के।
बस, है शून्य ही मालिक, अदब उसको दो,
मन को, छाती पै उसकी, नहीं चढ़ने दो।
अपने अंतस की सुनलें ध्वनि 'ओम' तो,
स्वर्ग भू यह बने, हो रही नर्क जो।।

कोसेगा कुछ, कुछ गायेगा।
'नहीं' बरसता हूँ आँसूं मिस,
न हि बरसता हूँ अपने हित।
देख हृदय जगती का जलता,
बरसा करता हूँ सेवा हित।
भले न अहसानी हो यह जग,
मैं तो बरसे ही जाऊँगा।
मेरा सब कुछ है जगती हित,
जलती को शीतल कर दूँगा।
पर बतलाओ, तुम क्यों रोते,
व्यथा कौन तुमको दहती है?
समझा! मैं का दुःख भारी है,
स्व-उपेक्षा तुमको खलती है।
तो लो सुनो, शांत-चित्त हो कर,
छोड़ो अहम्-वहम् का चक्कर।
अर्पण करके 'स्व' जगती हित,
जियो, मगर औरों के होकर।
फिर न उपेक्षा तुम्हें खलेगी,
वाक्-बाण नहीं बींध सकेंगे।
देकर सुख-शांति औरों को,
तुम रीते भी खुश हो लोगे ।।

अकेले चलो

कैसे हैं ये रिश्ते नाते, मन क्यों इनमें जकड़े जाता,
अपनेपन का यह बोध सदा ही, दुःख सुख से बाँधे रखता।
दुःख सुख के तूफानों से, चाहें तो क्या ना बच सकते?
क्यों ना औरस समझ स्वयँ को, दुनियाँ में हम रह सकते?
दुनियाँ में मैं ही हूँ अपना, और सभी हैं बस बेगाने,
बँधे न कोई बेगानों से, वे तो बस हैं आने-जाने।
खून के रिश्ते ना बाँधें, ना प्यार, मुहब्बत बाँध सके,
आखिर में दुःख दोनों देते, पहले ही मन को चेता दें।
कोशिश कर करके हार गये, अपना मन समझ सके ना हम,
कैसे दूजा समझे हमको, फिर व्यर्थ व्यथित क्यों होते हम ?
निज पर विश्वास करे मन क्या, वह तो हर पल बदले जाता,
दूजा विश्वास नहीं करता, तो उमड़-घुमड़ वह क्यों रोता ?
दुनियाँ में इकले आए हैं, इकले ही जाना है जग से,
कोई इक रहबर मिल जायेगा, उम्मीद न काटें क्यों जड़ से? ।

'स्व' का मरना

कर ले लाखों यत्न अंधेरा, रोशनी पकड़ ना पायेगा,
खुद मिटने का साहस दिखलाये, तब ही तेजोमय होगा।
अंतरिक्ष को छू पाऊँ, इच्छा तो बीज किया करता,
पर छू न सके जब तक मर कर, दो टुकडों में ना बंट जाता।
जब स्वरूप अपना त्यागे, तब ही रूई कपड़ा बनती,
मरने को गेहूँ राजी हो, तब ही उससे रोटी बनती।
कालिख की पहचान त्याग, कोयला चमक पा जाता है,
खुद को कसकर पकड़ रखे तो हीरा ना बन सकता है।
मिलने की चाह रखे सागर से, पर मिल कर तो खो जाती,
अस्तित्व चाहना हो तो फिर, नदिया ना संगम कर पाती।
ईश्वर को हम पाना चाहें, खुद मिटे बिना क्या संभव है?
जब मिटे खुदी तो बने खुदा, फिर कहाँ चाह या रंजिश है।।

सुख स्मृति

मरते-मरते सब जीते हैं, कोई तेज नजर ना आता है,
धकियाये से सब चलते हैं, अंतस ना कंपित होता है।
स्वाभाविक रहना भूले सब, कृत्रिमता को अपनाया है,
इसमें धन, पद, तन रक्षित हैं, उसमें बस निज का साया है।
औरों पर आश्रित जीवन बस, दासत्व हमें दे पाता है,
निज के मालिक न बनें जब तक, आनंद नहीं मिल पाता है।
छोटी-छोटी खुशियाँ भूला, मन दुःखकण भूल न पाता है,
फिर दुःख के पर्वत बन जाते, सुख उन पर चढ़ ना पाता है।
दुःख भूल, खुशी करलें संचय, बदलाव इसी से होता है,
खुशियों के नग बनते जाते, आनन्द उद्घाटित होता है ।।

चिर प्रश्न

व्यर्थ सभी हैं ये बातें अरे रे,
क्या हूँ, मैं क्यों हूँ न जाने कोई रे।
सूरज न जाने कि तपता है क्यों वो,
जाने न चंदा हो कम-ज्यादा क्यों वो।
नदिया न जाने, क्यों बहती ही जाती,
जाने न ऊर्मि, क्यों उठती औ गिरती।
कोई पेड़ सूखा और कोई हरा है,
बीजों के गर्भों में क्या, कुछ छुपा है।
रखें यत्न से सबको इकसार ही हम,
बना ना सकेंगे, जनमूर्तियां सम।
समझ ना सका कोई, सब पच के हारे,
जिये जा रहे बस, ऐसे ही सारे।
देगा न उत्तर कोई भी यहाँ पर,
वही प्रश्न सबमें, उठाता है निज सर।
थका मन मेरा, अब न सोचूँ-विचारूँ,
निरूद्देश्य पल-पल ही अब क्यों न जी लूँ?।

धागे की गांठ

सीधा-सरल रहा था धागा, आज भरा जो गाँठों से,
कैसे फिर पहले सा होवे, साबुत फिर पाऊं कैसे?
गाँठ भरा जब धागा दीखा, परे किया उसे ठेला।
उलझा और भी बेचारा, अब दिखे ना तंत अधेला।
दूर आँख से कर देने से, क्या गाँठें खुल जायेंगी?
होंगी वे मज़बूत, काटने पर भी कट ना पायेंगी।
सुलझा, सरल रहेगा धागा, पड़े गाँठ तब ही खोलें,
जीवन भी है धागे के सम, उसमें भी वैसा करलें।
गीध दृष्टि से देखें निज मन, कोना कोई न बच पाये,
तन के साथ-साथ मन की भी, गांठ खोलते नित जायें।।

टके–टके के लोग

करोड़पति, लखपति को कहता है,
लखपति, हज़ारपति को कहता है,
हज़ारपति, साधारण गरीब को कहता है,
गरीब, भिखारी को कहता है,
टके–टके के लोग।
पी.एच.डी., साधारण डिग्रीधारी को कहता है,
डिग्रीवाला, कम पढ़े लिखे को कहता है,
कम पढ़ा, अनपढ़ को कहता है,
टके–टके के लोग।
एक करोड़पति दूसरे को स्मगलर बताता है,
कहता है–टके–टके के लोग।
दूसरा पहले को आयकर चोर बताता है,
और कहता है–टके–टके के लोग।
यह सब समझ में आता है पर,
एक पढ़ा लिखा अमीर,
पढ़े लिखे गरीबों को जब कहता है–
टके–टके के लोग।
मेरा दिल रो पड़ता है,
उसे विद्वान मानने से इन्कार कर देता है,

शब्द जन्म

जिव्हा औ होठों में ही बंद रहती,
ना जन्मे ध्वनि मुक्त गर वो न होती।
सहारा ले उनका, न बनने दे बंधन,
ध्वनि तब ही जन्मे, जनक हों प्रसन्न मन ।।
न समझे ये वाणी, गुनहगार हूँ मैं,
दिया जन्म जिनने, उन्हें छोड़ा मैंने ।
हुआ जन्म होठों का, जिव्हा का सार्थक,
कि भावों विचारों के बन पाये सर्जक ।।
जो बाँधो किसीको तो सिकुड़ो स्वयं ही,
बंधा है कोई तो वो दोषी है खुद ही ।
सभी के सभी काम होते नियत हैं,
ना शिकवा, गिला, कोसना ना हमें हैं ।।

मुखौटे

लोभ का ऐसा जादू देखूँ,
त्याग के भीतर, स्वारथ दिखता ।
'क्रोध करूँ, न्याय के खातिर'
अहँ खड़ा हो पीछे हँसता ।
'मोह नहीं है' जब मैं कहता,
संग्रह मेरा मुझ पर हँसता ।
इच्छा ना है 'गर अब कुछ भी,
शब्द 'नहीं' फिर कैसे आता ?
ओढ़ मुखौटे कुछ ना बदले,
अंतरतम उद्घाटित होता।
सहज रहें औ मन को देखें,
तब ही मन परिवर्तित होता ।।

गद्य-काव्य

रूदन

रूदन, केवल बाहरी दुःख से नहीं आता,
मानसिक आघातों से ही नहीं आता,
अंतस के, अचेतन के
अकेलेपन से भी आता है,
कभी, बिना वज़ह रोये हो?
तो रो कर देखो,
एक-एक रोआँ काँप जाता है,
रोम-रोम अश्रुधारा बहाती है,
और अगर तुम रूक न गये तो,
रोने की चरम सीमा पर पहुँच कर
वही रोमावली उल्लसित हो जाती है,
हँसी का झरना फूट पड़ता है,
एक असीम आनंद की अनुभूति होती है
बिना वजह ही, एक बार
संपूर्ण तन-मन से, रोकर तो देखो।।

पैसे से बग़ावत कर उठता है,
उसी ने तो पट्टी बांध दी है।
पर नहीं, पैसे का कोई दोष नहीं,
वह तो जड़ वस्तु है,
चेतन अमीर में चेतना ही नहीं, तभी तो वह,
गरीब विद्वान की मज़बूरी का फ़ायदा उठाता है,
खुद उसे पैसा देकर काम निकलवाता है,
अमीरज़ादा बनता है और फिर उसी को कहता है-
टके-टके के लोग।
जो ईमानदार उसके अर्थजाल में नहीं फंसते,
उसका उल्टा-सीधा काम नहीं बनाते,
वो उन्हें नीचा दिखाने की कोशिश करता है,
उनका मख़ौल उड़ाता है
और उनके लिए कहता फिरता है-
टके-टके के लोग।
बेईमान अमीर या बुद्धिमान गरीब,
किसके लिये ये फिकरा प्रयुक्त करें?
बस, एक ही बात निश्चित है, कोई बुद्धिवान,
गैरतवान कभी भी, किसी के लिए भी
यह नहीं कह सकता-टके-टके के लोग।।

आज के प्रति

तुम कहते हो
सत्य, न्याय, अहिंसा रहे ही नहीं
वे थे ही कब?
क्या आधार है, तुम्हारा?
''जिसकी लाठी उसकी भैंस'' कहावत
कोई आज तो नहीं बनी,
सतयुग, त्रेता, द्वापर सब की कथाऐं देख लो,
युगों-युगों से सच्चाई का मापदंड,
समाज का, यही तो रहा है,
फिर यह आक्रोश, आज के प्रति ही क्यों?

हास्य

कभी खुल कर हंसे हो,
इतना कि बस हँसी ही बन गये हो,
तो, तुम्हें ज़रूर मालूम होगा कि
हँसी की चरम सीमा पर, आँखों में आँसू आ जाते हैं
हँसना-रोना कब एक हो जाता है
मालूम ही नहीं पड़ता
हँसने के कगार को छूकर
पैंडुलम रोने के कगार की ओर बढ़ जाता है
हँसे हो कभी इतना?

संग-साथ

तुम, मेरे साथ चलने में हिचकिचाते हो,
शायद, मेरा रास्ता नरक का है।
मुझे अपने साथ चलने पर ज़ोर देते हो,
कहते हो, वह स्वर्ग का रास्ता है।
पर मैं कैसे चलूँ?
कैसे विश्वास करूँ तुम्हारा?
मेरे साथ, मेरी ही दुनियाँ में,
कुछ देर तो रहो, कुछ दूर तो चलो,
फिर देखना,
मैं भी तुम्हारे साथ चल पड़ूँगी,
पर साथ रहने का, चलने का विश्वास तो हो!
मुझे भरोसा तो होने दो कि
तुम बहारों में ही नहीं, वीरानों में भी,
मेरे साथ ही रहोगे,
मेरे ऊबड़-खाबड़ रूप को,
राह को देख,
भाग नहीं जाओगे।।

सफल नेता

भीड़ पर शासन करने वाला, नेता कहा जाता है।
भीड़ व्यक्तियों से बनती है
उनके अलग-अलग विचार कार्य प्रणाली होती है
उनको एक साथ रख पाने में बड़ी दिक्कत होती है
पर नेता, यह कार्य चुटकियों में कर दिखाता है
इसको, उसको, तुमको, सबही को खुश कर पाता है।
कैसे, कैसे करता है, वह यह सब?
लीजिये, एक उदाहरण देती हूँ।
शराब का ही किस्सा ले लें, वह एक ज्वलंत समस्या है,
राजा या प्रजा कोई हो, यह सभी का वाक्या है।
शराब बनाने वाला शराब बनाने का लाइसेंस माँगता है,
नेता खुशी खुशी, बिना ढ़ील-ढ़ाल के दे देता है,
क्योंकि इसीमें सबकी भलाई है, उन्नति है
देना हमारी संस्कृति है।
कृषक अंगूर उगाकर खुशहाल होगा
अंगूर सड़ाने के लिये ड्रम वाला भी पैसा पायेगा
बोतलें बनाने को फैक्ट्रियें खुलेंगी
ट्रक, रेलों को भाड़ा मिलेगा
देश की बेरोज़गारी दूर करने में सहायता मिलेगी
चुंगी लगाकर सरकार भी कमायेगी
बेरोज़गार युवक दुकानें खोल पायेंगे

हरजाई मन

कैसा है, ये मानव मन?
अभी-अभी जिसकी प्रशंसा करते,
उस की जुबान नहीं थकती थी,
उतनी ही दृढ़ता से जोर-शोर से,
वह उसकी बुराई कर रहा है,
शायद कुछ ही देर में फिर
बड़ाई पर उतारू हो जाय,
कैसा है, मन का यह हरजाई पन?
अपने निहित स्वार्थ के कारण,
वह ऐसा करता है, या कि
दूसरे को सम्पूर्ण मानव मानकर
अच्छाई-बुराई में समभाव रखता है,
सारा महत्व इसी बात का तो है।।

विश्वास

आप कैसे कहते हैं, दुनियाँ बड़ी अजीब है,
यहाँ किसी को किसी पर विश्वास ही नहीं।
जरा किसी की बुराई करके तो देखिये,
दबी जुबान से सही, पर
सब सुनने वाले, बिना अपवाद के,
विश्वास कर लेंगे,
जानते हुए भी कि वह सच नहीं हो सकता,
आप भी विश्वास करे बगैर नहीं रह पायेंगे,
जहाँ-तहाँ ढोल बजाते फिरेंगे,
'यह ही सच है' डंके की चोट कहेंगे,
क्या ऐसा नहीं है,
तो फिर क्यों कहते हो,
किसी को किसी पर विश्वास नहीं है।।

प्यार

क्या कहा?
दुनियाँ में प्यार ही नहीं रह गया,
यह ग़लत है !
सत्य तो यही है कि आज के पहले,
शायद कभी इतना प्यार, रहा ही नहीं।
एक-एक की आँखों में झाँक कर देखो,
प्यार का सागर उफ़न आया है।
क्या कभी ऐसा समय आया था,
कि जब सभी ने तन-मन-धन सभी,
दाँव पर लगा दिये हों,
अपने प्रति, केवल अपने ही प्रति,
असीमित प्यार के कारण।।

मस्ती से समय बिताते जायेंगे।
अब समाज सेवी कहेंगे – 'शराबबंदी करो,
जनता के तन, मन, धन की रक्षा करो।
नेता के पास उसका भी जवाब है –
जनता समाज सेवकों की मोहताज़ है ।
जाओ, जन–जागृति पैदा करो,
लोगों को कहो, यह विष न पियो
वह स्वयं भी तो भाषणों में यही कहता है
और हर शाम पिये जाता है
उसे जनता की फिकिर जो है
और शराब ग़म गलत करने की दवा ही तो है।
यदि कोई सिरफिरा कह दे, क्यों न सरकार
शराब बनवाना ही बंद कर दे
तो वह देश के आतिथ्य की दुहाई देगा
भारतीय संस्कृति की महिमा गायेगा
और कहेगा –
विदेशी पर्यटकों का सत्कार कैसे करेंगे?
क्या हम उन्हें ज़रा सी शराब भी न देंगे?
नहीं, हम बनाना नहीं रोक सकते
'अतिथि देवो भव' पर लांछन नहीं लगा सकते
लोगों को स्वयं पीने पर रोक लगाना सिखाओ
अरे ! उन्हें ध्यान के नये नये रूप सिखाओ
रोज़गारी के नये आयाम खुलवाओ।

आखिर कब तक?

आखिर कब तक?
हम जानते हुए अनजान बने रहेंगे?
सत्ता की चकाचौंध में, सच्चे नेताओं को
नज़रअंदाज़ करते रहेंगे?
दूसरे पर भले के लिये, ज़ोर–ज़बर्दस्ती करते रहेंगे?
नारी के, दलितों के तन–मन को प्रताड़ित करते रहेंगे?
नन्हें मुन्ने बच्चे बेगारी करते रहेंगे?
देश के नवयुवक राजनीतिज्ञों की कठपुतली बने रहेंगे?
देश के शुभचिंतक कसमसाते रहेंगे?
लोग टूटी हुई बैसाखियों के सहारे घिसटते रहेंगे?
हम भ्रष्ट राजनीतिज्ञों को सहते रहेंगे?
आखिर कब तक ?

तो, एक ओर वह शराब फैक्टरी का उद्घाटन करेगा,
उसकी दुकानें खुलवायेगा
दूसरी ओर शराब बंदी का उपदेश देगा
उन पर 'हानिकारक' लिखवायेगा
तभी वह सफल राजनीतिज्ञ,
सफल नेता कहलायेगा।।

समाज–सुधारक

दलितों की, शोषितों की, सहायता करना चाहते हो?
करो, ज़रूर करो, इससे मृत्यु के
हजारों वर्ष बाद ही सही,
नाम तो अमर हो ही जायेगा,
जीते जी तो पत्थर ही खाओगे,
व्यंग बाणों से बींधे जाओगे,
या फिर सूली पर लटकाये जाओगे,
केवल सम्पन्न लोगों द्वारा ही नहीं,
बल्कि उन्हीं के हाथों,
जिनकी मदद करना चाहते हो,
साहस है! तो फिर कदम आगे बढ़ाओ,
बिना माँगे, सम्पूर्ण शक्ति से,
दलितों की सहायता में जुट जाओ।।

जनता और राजनेता

देश में अकाल पड़ा है,
राजनेता के घर छप्पन भोग सजा है।
साधारण जन भूख से बिलबिला रहा है,
राजनेता को अजीर्ण हो रहा है।
जनता को चिथड़े भी मयस्सर नहीं,
नेता रेशम सिवाय पहनता नहीं।
यहाँ छप्पर भी नसीब नहीं है,
वहाँ पचास कमरों का बंगला भी कम है।
लोग पेट काट कर भी कर दे रहे हैं,
नेता कर न दे, जनता के धन से ऐश कर रहे हैं।
जनता चोर, डाकू, लुच्चे, लफंगों से तंग है,
नेता उन्हें पकड़वाता नहीं, कहता है –
'उनका हमारा तो जनम–जनम का संग है।'

जिनने बाँधा बाँध, न उनका नाम निशान कहीं दिखता
जिसने उसको बनवाया, उसका प्रशस्ति लेख मिलता।
पत्थर में प्राण फूँकनेवाला कलाकार है अनजाना
मूर्ति स्थापित करनेवाले को बस सबने जाना।

पद पैसे का अजगर नेता के तन-मन में बैठा
कुछ और भला, सूझे कैसे वो तृप्त नहीं होने देता।

यदि चाहो अच्छे शासक, जनता कुछ नियम बना देना।
न्याय प्रियता औ देशप्रेम की योग्यता ज़रूरी कर देना।।

ज़रूरत है इक राजगुरू की, सच्चा ध्यानी-योगी हो जो।
संपेरे सम शासक भुजंग को नित वश में रख सकता वो।।

ज़्यादा नियमों का बनना, उनकी कमज़ोरी बतलाता।
कानून बनायें जब ज़्यादा, तब ही उनको तोड़ा जाता।।

हम दो, हमारे दो नियम यह, भूल जाना ए पिता,
अब ज़मीं के संग, दिल, संतान का, तंग हो गया ।।

अब नहीं पिघलता है, इन आँसुओं से दिल कोई,
फब्तियों पै फब्तियाँ, कसते ही जाते अपने लोग ।।

मुक्तक

खिलते हुए गुलाब को, ज़बरन जो कोई तोड़ ले,
हाथों में राख आयेगी या होयेंगे ज़खम ।।

ज़ख्मों को ना कुरेदना, ऐ हुस्न के गुमानी,
पस की फुहार उठकर, तन, मन औ रूह भरेगी ।।

कहते शराब पी कर रूमानी रूह होती,
मैंने तो जाना इकली ही थी, वो है, रहेगी ।।

सब दर-दरीचे रखना तू खोल कर ए दोस्त,
ना जाने कब खुदा की मंशा हो देखूँ दुनियाँ ।।

सन्सार नाम उसका, जिसमें न सार कुछ हो,
क्यों वक्त खोये उसके पीछे, क्यों उसमें लिपटे ।।

आदर्श का ही पल्ला थामा क्यों ज़िन्दगी में,
दुत्कारें, कोसें अपने, छुपकर के राह चल दें ।।

जिनके लिये सहा सब, पलकों पै जिनको रक्खा,
कहते हैं आज वो ही, बस भेद-भाव रक्खा ।।

दुःख, मौत, बेरूखी से, दिल इस तरह हो आए,
बेबात ही समन्दर, ऑखों में तैर जाये ।।

आलस है इतना गहरा, बरसों से ये न टूटा,
हैरत है फिर भी अल्ला, मुझको सदाऐं देता ।।

कुछ भी न रास आता, अब मुझको ज़िंदगी में,
छोड़ा भरोसा जब से, मेरे ही हम सफर ने ।।

वे शख्स खुशनसीब हैं, जो हैं जहाँ में इकले,
हमजोलियों के नश्तर, दिल को न छलनी करते ।।

दीदारे माशूक होता, चश्मे दिल पर बह जाते,
दीदार न होये जब तक, शोले से दिल में जलते ।।

लगता कभी ये आँसू, पल भर ना थम सकेंगे,
दूजे ही पल लगे यों, ना आये मुद्दतों से ।।

कहता है मन अभी कुछ, दूजे ही क्षण कहे कुछ,
इस राजनीति में पड़, हरजाई पाये दुःख-सुख ।।

होती है दवा सब मर्ज़ों की, बस गाफिल ही कह सकता है,
कैसे पाये दिल दर्दे दवा, हालत का बयां ना होता है ।।

दौलत का न कर इतना, इज़हार मेरे दोस्त,
नई रीत ना बना, न भर, दीनों में द्वेष-रोष ।।

भूल जाते भर चुके, बेरूखियों से जाम ये,
बस ऊंडेले जा रहे, निंदा, घृणा अपने ही लोग ।।

इस क़दर उलझे हुए हैं, अपने दर्दो–गम में हम,
होश में रहकर हंसें, बोलें ये मुमकिन है नहीं ।।

मरसिया पढ़ने तो आओगे, कि दुनियाँ देखेगी,
ज़िंदे की कद्र की कितनी, ये दिल तो तेरा जाने है ।।

बेमुरव्वत, बेहया, बेदिल है, पीढ़ी आज की,
क्यों बनें औलाद सम, झेलें क्यों हम शर्मिन्दगी ।।

तुम सब तो जीते हो केवल, नकारात्मकता के जग में,
कहकर तोड़ लिये संबंध, है यही सकारात्मकता क्या ?

लिखकर तो न माँगा चाहूँ मैं, इज़हारे वफ़ा तुमसे लेकिन,
काबिले भरोसे हूँ ऐसा, एहसास तो होने दो मुझको ।।

हँसी के फूल बिखराता कहीं मोती लुटाता है,
कितना, क्या मिला किसको, ये फैला दामन जाने है ।।

पहले आश्रम में शिक्षा पाई, दूजे में न फुर्सत कर्म से पाई,
तीजे में सिखलाया बच्चों को, चौथे में तो जीवन जी लूँ भाई ।।

गरीबी बढ़ती जाती है, महल भी उठते जाते हैं,
तेरा शासन निराला है, तेरे करतब निराले हैं ।

ज़रा सोचा तो पाया है कि आतंकवाद दोनों हैं,
जहाँ खुल के कि या छुप के भी, चलते तीरो-भाले हैं ।।

इस तन में कैद पंछी, अब चाहता रिहाई,
कर रहे ये दिल-दिमाग, हौसला अफज़ाई ।
जाने के पहिले माफी, मैं माँगती हूँ सबसे,
रक्खो भरोसा उस पै, करो दिल्लगी भी सबसे ।।

कहता है क्या हमारा व्यवहार ज़रा सोचो,
सामान्य कही बात न, अपने पै लेओ दोस्तो ।।

पहला कदम भाव का यदि ना करें कर्म तो भी फल देता,
रख लो भाव-विचार शुद्ध तो पाप-कर्म नहीं हो सकता ।।

हालात आजके बतलाते हैं - कल था कैसा,
कर्म आज के बतलाते - कल होगा कैसा !

बचपन में किया बड़ों का चाहा, यौवन में पति का चाहा।
बनी माँ तब बच्चों से चली, नारी ने स्वमन ना पाया?

समझ न आए, क्यों न बगावत करती नारी ?
दासी बनना है तो पड़ी ये जगती सारी !

'जग में प्रभु की मूरत है माँ' यह फिकरा हमको सच लगता।
समभाव है गाली, प्रशंसा में, औ आशीर्वाद नहीं चुकता।

नारी प्रशस्ति महफिलों में, गा रहा नरवर्ग है।
सुन वहीं अचरज करे, उससे ही ये अमिशप्त माँ ।।

सहते बच्चों को, दोस्तों को, स्त्री की मुख़ालत करते हैं।
सौ गलती माफ इन्सां की, उन्हें तो देवी कहते हैं।।

ऐ खुदा ! अब ना बनाना, माँ का दिल तू मोम का।
निज का घर रौशन रखे, औलाद हिय उसका जला।

'नारी की तरह संवेगों में बहना, पुरूष को शोभा नहीं देता'
सुन-सुनकर बच्चा, संवेदनहीन हो गया,
पहले पड़ोसियों को फिर अपनों को भी मार गया।

वो कुर्सी मुझे (गृहलक्ष्मी को) बहुत पसंद थी,
बाहरी ही नहीं, अंदरूनी रंगों से रंगा था मैंने;
फिर एक दिन वह, कबाड़ी को दे दी गई !